राजस्थानी शब्द सम्पदा



राजस्थानी शब्द सम्पदा

मूलचन्द 'प्राणेश'

प्रथम संस्करण 1990

मूल्य पचास रुपये मात्र

प्रकाशक राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति
श्रीडूंगरगढ़ (चूरू) राजस्थान

मुद्रक सांखला प्रिण्टर्स, सुगन निवास
चन्दन सागर, बीकानेर

आभार

राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति, ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्रकाशित यह 18वीं पुस्तक 'राजस्थानी शब्द सम्पदा' विज्ञ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने जा रहे हैं। प्राचीन राजस्थानी शब्दों का अर्थ एवम् विवेचना राजस्थानी भाषाविद् एवम् कहानीकार श्री मूलचन्द 'प्राणेश' ने अथक प्रयास से की है। प्रस्तुत पुस्तक में राजस्थानी के शब्दों का सदर्भ सहित उदाहरण दिया गया है, जिससे पुस्तक की महत्ता और भी बढ़ गई है।

श्री प्राणेश की इस रचना से राजस्थानी भाषा साहित्य की समृद्धि में अपूर्व योगदान मिलेगा, ऐसी आशा है।

राजस्थानी के पाठक, विद्वान एवम् भाषाविद् इस पुस्तक विषयक अपनी अमूल्य राय प्रकट कर संस्था के उत्साह को बढ़ायेंगे।

मन्त्री

प्रताप जयन्ती, 2047 — राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति

प्रस्तावना

राजस्थान के आदर्श चरित्रों पर समग्र भारतीय प्रजा गौरव अनुभव करती है। यहां के महान् स्वतंत्रता प्रेमी राणा प्रताप और अप्रतिम वीर दुर्गादास आदि को सम्पूर्ण देश राष्ट्रीय चरित्र मानकर आदर देता है। ऐसे ही अन्य भी अगणित आदर्श चरित्र राजस्थान के इतिहास में प्रकाशमान हैं, जिनका यशोगान कर भारत के बहुसंख्यक कवि कोविदों ने अपनी रचना धर्मिता सार्थक की है।

राजस्थान के सम्बन्ध में विरचित भारत के विभिन्न प्रांतों की साहित्य सामग्री भी असाधारण रूप से महत्त्वपूर्ण है। भारत की उन्नत प्रांतीय भाषाओं में राजस्थानी चरित्रों के आधार पर विविध विधाओं में अत्यन्त सराहनीय रचनाएं तैयार हुई हैं और उन्हें खासा लोकप्रियता भी मिली है। इस दिशा में सहज ही बंगला साहित्य का नाम लिया जा सकता है। फिर भी अद्यावधि इस तथ्य पर साहित्यकारों का समुचित ध्यान नहीं जा पाया है कि राजस्थान के इन आदर्श चरित्रों का निर्माण तो राजस्थानी भाषा और उसके साहित्य से ही हुआ है, उन चरित्र नायकों को प्रेरणा तो मूलतः वहीं से मिली है। ऐसी स्थिति में यह सहज ही कहा जा सकता है कि राजस्थान के इतिहास से भी अधिक आवश्यक उसके साहित्य का अध्ययन है।

राजस्थानी भाषा का साहित्य असाधारण और अनुपम है। इसकी पुरानी सामग्री में पद्य तथा गद्य की इतनी अधिक विधाएं हैं कि उनकी समता शायद ही भारत की कोई दूसरी विकसित प्रांतीय भाषा कर सके। राजस्थानी साहित्य की इन विविध विधाओं में रचनाओं की भी प्रचुरता है। परन्तु खेद है कि अभी तक वे समुचित रूप से प्रकाश में नहीं आ पाई हैं और पुरानी हस्त प्रतियां में पड़ी प्रकाश में आने की प्रतीक्षा कर रही हैं।

पिछले समय में राजस्थान की जनता ने भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को सर्वाधिक महत्त्व दिया और उसके हृदय में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति इतना अधिक प्रेम भाव उमड़ पड़ा कि उसने अपनी मातृभाषा राजस्थानी को एकदम

गौण मान लिया और उसकी आवश्यक सेवा-सुश्रूषा भी छोड दी, यहा तक कि भारतीय स्वाधीनता सग्राम से पूर्व और उसके समय मे भी राजस्थानी भाषा मे जो असाधारण प्रेरणा गीत गाए गए तथा असामान्य उद्बोधन-काव्य विरचित हुआ उसे भी गौण कर दिया अथवा लगभग भुला ही दिया।[1]

इसका फल यह हुआ कि राजस्थानी भाषा साहित्य को समुचित प्रकाश नही मिल पाया और उसका अमृत भारत की सम्पूर्ण प्रजा तक नही पहुच सका। हर्ष का विषय है कि राजस्थानी जनता का ध्यान अब इस दिशा मे गया है और राजस्थानी भाषा साहित्य म एक नव-जागरण नजर आ रहा है। ध्यान रखना चाहिए कि यह नव जागरण मात्र राजस्थान के लिए ही नही अपितु सम्पूर्ण भारत के लिए अत्यत उपयोगी और लाभदायक है।

राजस्थानी साहित्य का इतिहास पिछले लगभग एक हजार वर्षों की अवधि सीमा म आता है और उत्तरकालीन अपभ्रश मे ही इसका प्रारम्भ समझना चाहिए। इसका आदि स्वरूप आचार्य हेमचन्द्र द्वारा अपने व्याकरण ग्रथ म सकलित उन बहुसख्यक लोक प्रचलित दोहो म द्रष्टव्य है जिनको कुछ विद्वानो ने 'पुरानी हिन्दी' सज्ञा दी है। परन्तु यथार्थ मे वह प्राचीन राजस्थानी अथवा जूनी गुजराती है क्योकि उसका सम्बन्ध प्राचीन राजस्थान एव प्राचीन गुजरात के एकीकृत भू भाग से है और आज भी इस विस्तृत क्षेत्र म ये पुराने दोहे अपने परिवर्तित अथवा विकसित रूप मे लोकमुख पर अवस्थित हैं तथा अत्यन्त जनप्रिय हैं।

प्रतीत होता है कि आदिकालीन राजस्थानी काव्य (सन् 1050 से 1450) का अधिकाश जो प्रधान रूप से गेय प्रधान था मौखिक परम्परा पर अवस्थित होने के कारण विलुप्त सा हो गया परन्तु तत्कालीन भक्ति का अश किसी रूप म अद्यावधि सुरक्षित है और वह जन धर्म तथा समाज स सम्बन्धित है। इस विषय मे कुछ सामग्री प्रकाश म भी आई है जो आदिकालीन राजस्थानी साहित्य के अध्ययन हेतु नितान्त उपयोगी एव आवश्यक है।

राजस्थानी साहित्य के इतिहास का मध्य काल (सन 1450 से 1850) विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसे राजस्थानी साहित्य का स्वर्णकाल' कहा जा सकता है। इस कालावधि मे प्रचुर परिमाण मे विविध प्रकार का गद्य ... लिखा गया और इस काव्य के कवि कोविदों की सख्या भी

राजस्थानी साहित्य के इतिहास का आधुनिक-काल (सन् 1850 से चालू) विविध प्रकार के परिवर्तन देखता रहा है और इस काल में नवीन साहित्य के निर्माण के साथ साथ प्राचीन साहित्य के उद्धार हेतु अनेक प्रयास हुए हैं और हो भी रहे हैं।

राजस्थानी भाषा के स्वरूप और साहित्य को प्रकाशमान करने के लिए पाश्चात्य विद्वान जाज ग्रियर्सन और लुइजि पिओ तस्सितोरी आदि भाषाविदों तथा साहित्य-सेवीयों की सेवाएं अविस्मरणीय हैं तो साथ ही पं रामकरण आसोपा, डॉ सुनीतिकुमार चटर्जी डॉ मोतीलाल मेनारिया, आचार्य बदरीप्रसाद साकरिया, पद्मश्री सीताराम लालस, श्री उदयराज उज्ज्वल, श्री अगरचन्द नाहटा, श्री रावत सारस्वत, डॉ कन्हैयालाल सहल, श्री सौभाग्यसिंह शेखावत, डॉ नारायणसिंह भाटी आदि महानुभावों का साधना-पूर्ण कार्य भी असाधारण रूप से महत्त्वपूर्ण है।

इसी शृंखला में ठा रामसिंह तँवर, श्री सूर्यकरण पारीक एवं श्री नरोत्तमदास स्वामी की 'त्रयी' राजस्थानी भाषा-साहित्य के उद्धार हेतु विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्होंने विविध प्राचीन राजस्थानी ग्रंथों के सम्पादन के साथ-साथ राजस्थानी भाषा में नवीन साहित्य निर्माण के लिए भी प्रबल प्रेरणा दी। इनके द्वारा सम्पादित 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' तथा 'ढोला मारू रा दूहा' ने तो देश-व्यापी ख्याति अर्जित की और राजस्थानी भाषा-साहित्य की गौरव वृद्धि में असाधारण योगदान किया।

इसी क्रम में अन्य अनेक विद्वानों ने भी विविध प्राचीन राजस्थानी ग्रन्थों को सम्पादित रूप में प्रकाशित किया और उनको अच्छी लोकप्रियता प्राप्त हुई। इनमें कई ग्रन्थों का मूलपाठ साधारण टिप्पणियों सहित प्रकाशित हुआ तो कई ग्रन्थ पूर्णतया हिन्दी टीका एवं शब्दार्थ सहित प्रकाश में आए जिससे राजस्थानी भाषा के विशिष्ट शब्दों की ओर भी विद्वानों का ध्यान आकृष्ट होना स्वाभाविक था। इसी क्रम में राजस्थानी शब्द कोष भी तयार हुए जिनमें श्री सीताराम लालस का 'राजस्थानी हिन्दी सबद कोस' तो परिमाण की दृष्टि से अद्वितीय है।

इसी क्रम में समयानुसार विविध विश्वविद्यालयों पाठ्यक्रमों में राजस्थानी ग्रंथ शामिल किए गए जिससे उनकी ओर विशेष ध्यान जाना स्वाभाविक था। फलत उनके सम्बन्ध में विस्तृत विवेचनात्मक आलेख तयार

हुए तथा पीएच डी उपाधि हेतु भी राजस्थानी साहित्य के विविध अगो पर शोध प्रबध लिखे गए। इस प्रकार प्रचुर राजस्थानी साहित्य सामग्री विद्वानो के सामने आई। फलस्वरूप राजस्थानी भाषा की विशिष्ट शब्दावली ने विद्वानो को अथ सशोधन की दिशा म सक्रिय किया।

अनेक विद्वानों ने प्राचीन राजस्थानी शब्दो को अपनी मति गति के अनुसार हिन्दी म अथ स्पष्ट करने का पूरा प्रयत्न किया परन्तु उनम मतभद क लिए भी अवश्य ही अवकाश रहा। फलस्वरूप बहुत बडी सख्या मे अथ सशोधन क लिए विविध पत्र पत्रिकाओ म एव छोटे बडे लेखो के प्रकाशन की एक धारा सी चल पडी जिनम सर्वाधिक लेख लोकगाथा 'ढोला मारू रा दूहा' के अथ सशोधन हेतु लिखे गए।

इनके अनुसार कई प्राचीन राजस्थानी ग्रथो के नए सस्करणो म अथ प्रकाशन की दृष्टि से सुधार भी किया गया परन्तु अभी तक यह प्रवाह चल ही रहा है और 'शब्द-चर्चा' राजस्थान की शोध पत्रिकाओ का एक विशेष स्तभ ही बन गया है।

प्राचीन और मध्यकालीन राजस्थानी भाषा की शब्द सम्पदा अपरिमेय होने के साथ साथ अनुसधेय एव श्रम साध्य भी है। काफी समय तक इसका अध्ययन तथा अनुशीलन न होने के कारण इसका शब्दाथ एक समस्या बना हुआ है। इस समस्या को सुलझाने के लिए मुशी अजमेरीजी डा माताप्रसाद गुप्त प काशीराम शर्मा श्री रावत सारस्वत डा मनोहर शर्मा श्री भवरलाल नाहटा डा शम्भुसिंह मनोहर श्री मूलचद प्राणेश आदि ने विशेष श्रम किया है और काफी लेख लिखे हैं, जो गहराई स अध्ययन करने योग्य हैं।

राजस्थानी शब्द सम्पदा पुस्तक क प्रणता श्री मूलचद 'प्राणेश' इस दिशा म विशेष सक्रिय रहे हैं। आपने स्वय प्राचीन राजस्थानी का य ग्रथ नागदमण रणमल्ल छद और राउ जइतसी री छद का हिन्दी टीका सहित सम्पादन किया है जिनके प्रकाशन हेतु भारतीय विद्या मन्दिर शोध प्रतिष्ठान बीकानेर साधुवाद का पात्र है। इसके अलावा श्री प्राणेश ने अथ सशोधन की दृष्टि म काफी लेख भी प्रकाशित करवाए हैं जो विद्वानो द्वारा बडे ध्यान से पढे गए हैं।

हर्ष का विषय है कि श्री प्राणेशजी की यह प्रक्रिया अभी तक सतत चालू है। आपकी यह पुस्तक शब्द चर्चा की दृष्टि म अत्यत उपयोगी होने क

साथ-साथ मानवर्धक भी है। खास तौर से राजस्थानी भाषा साहित्य के विद्यार्थियों के लिए यह बड़ी लाभदायक है।

विद्वान लेखक ने 'राजस्थानी शब्द-सम्पदा' में अनेक राजस्थानी ग्रन्थों के सम्पादकों की त्रुटियों पर प्रकाश डाला है और सशोधन हेतु अपनी सम्मति दी है। इन ग्रन्थों में 'ढोला मारू रा दूहा', 'वेलि क्रिसन रुकमणी री', 'महादेव पार्वती री वेलि', 'वचनिका राठौड़ रतनसिंघ महेसदासोत री', 'अचळदास खीची री वचनिका', 'बीसलदेव रास', 'पृथ्वीराज रासो', 'गोरखवाणी', 'नाथ सिद्धों की बानियां', 'प्रद्युम्न चरित', 'जिणदत्त चरित', 'रास और रासान्वयी काव्य', 'राजरूपक', 'डिंगल में वीर रस', 'कुतुब शतक' तथा 'राजस्थानी नीति-दूहा' आदि प्रमुख हैं।

इनमें से कई ग्रंथ एक ही विद्वान द्वारा सम्पादित हैं और कई अनेक विद्वानों के सम्मिलित प्रयास से सम्पादित हुए हैं। इसके साथ ही कुछ ग्रन्थ ऐसे हैं, जिनके विभिन्न विद्वानों द्वारा सम्पादित अलग-अलग सस्करण भी प्रकाश में आए हैं।

साथ ही यह भी ध्यान में रखने योग्य है कि प्रस्तुत ग्रन्थ में श्री प्राणेशजी ने अन्य विद्वानों के लेखों में दिए गए सुझावों में से भी आवश्यक एवं उपयोगी सामग्री सकलित की है, जिससे इस पुस्तक की उपयोगिता में विशेष वृद्धि हुई है।

प्रस्तुत ग्रंथ में राजस्थानी के खास तौर से चुने हुए कुल 153 (एक सौ तिरेपन) शब्दों पर अर्थ प्रकाशन की दृष्टि से अकारादि क्रम से विचार किया गया है। इस शब्दावली में और भी वृद्धि की जा सकती थी परन्तु शायद ग्रन्थ के आकार को ध्यान में रखकर इसे अधिक विस्तार नहीं दिया गया। फिर भी ऐसा अनुभव होता है कि यह क्रम आगे भी चालू रखने योग्य है क्योंकि अब भी पुरानी राजस्थानी भाषा के ऐसे बहुत से शब्द हैं जिनका अर्थ सर्वथा स्पष्ट नहीं है अथवा जिनके सम्बन्ध में पण्डितों में पर्याप्त मतभेद है।

विद्वान लेखक ने पुस्तक में सर्वत्र अपने मत की पुष्टि हेतु बड़ी संख्या में ऐसे ग्रन्थों से उद्धरण दिए हैं, जिनमें विवक्ष्य शब्द का प्रयोग हुआ है। यह सब लेखक के विस्तृत अध्ययन अनुशीलन का प्रमाण तो है ही साथ साथ यह प्रक्रिया उन्हीं शब्दों पर और भी अधिक गहराई से विचार करने हेतु अन्य विद्वानों के लिए सुगम मार्ग प्रस्तुत करती है जो सराहनीय है। विषय को

स्पष्ट करने हेतु एक उदाहरण देना उचित प्रतीत होता है—

भावठि

'भावठि' शब्द का प्रयोग 'अचलदास खीची री वचनिका' के माध्यम से प्रकाश में आया। यथा—

तउ वीस हथि विरोळि,
तइ वीसहथि विरोळियइ।
'भावठि भागइ तू तणइ
हिज्यउ सू काई हिमाळि।
(वचनिका, पृ 36)

'वचनिका' के प्रथम सम्पादक श्री दीनानाथ खत्री ने प्रस्तुत 'भावठि' शब्द का अर्थ बिना दिये ही इसे विचारणीय शब्द सूची में ज्यों का त्यों रख दिया। नवीन संस्करण के सम्पादक श्री भूपतिराम साकरिया ने अपनी गोल माल भाषा में इस शब्द का अर्थ दिया है— सारी इच्छाएं। उपर्युक्त उद्धृत पद्य के तीसरे पद्यांश का हिन्दी अर्थ इस प्रकार दिया है— मेरी सारी इच्छाएं आप पर न्यौछावर हैं। पता नहीं इस अर्थ का आधार क्या है! भावठि का सीधा सादा अर्थ होता है—भवकष्ट, दुःख, संकट इत्यादि।

अन्य उदाहरण—

1 मसतक सुन्दर तिलक धरइ दरसण दीठा भावठि भाजइ।
—ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ 159

2 घरि घरि मगळ हावइ नवनवा रे भावइ भावठि सगळी भाज रे।
—वही पृ 246

3 का य तोरा ता धमळ कळोधर, 'भावठ भजण लील' मुवाळ।
—प्रस्तावना, हरिरस, पृ 8

ध्यान रखना चाहिए कि पुरानी राजस्थानी साहित्य में सबसे बड़ी संख्या संस्कृत से व्युत्पन्न शब्दों की है। इसके साथ ही अरबी फारसी से व्युत्पन्न शब्द भी काफी हैं। इनके अतिरिक्त देशज शब्दावली भी बड़ी है और वह वर्तमान में प्रयोग से बाहर है। इस स्थिति ने राजस्थानी में शब्दार्थ के विचार से किसी अंश में जटिलता ला दी है।

ग्रन्थ में शब्दों की व्युत्पत्ति विषयक जटिल भाग को छोड़ दिया गया है जिससे यह सर्व साधारण के लिए अरोचक नहीं हुआ है और विद्यार्थियों के लिए तो ज्ञानवर्धक होने के साथ साथ रुचिकर भी बन गया है।

हो सकता है कि श्री प्राणेश जी द्वारा प्रस्तुत किए गए शब्दार्थ पर यत्र-तत्र अन्य विद्वानों का मतभेद हो। फिर भी यह कहना उचित है कि शब्द और उसका अर्थ एक ऐसा विषय है, जिसमे विद्वानो का मतभेद होना सर्वथा स्वाभाविक है। एक ही शब्द अनेकार्थवाची भी होता है और प्रसगानुसार उसका अर्थ बदलता है। साथ ही स्थान और समय के अनुसार भी शब्द मे रूपान्तर तथा अर्थान्तर आता है।

विद्वान लेखक ने ग्रन्थ म सर्वत्र अपना मन्तव्य बडी शालीनता के साथ प्रकट किया है और कही भी दुराग्रह की स्थिति दृष्टिगोचर नहीं होती।

निश्चय ही राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति, श्री डूगरगढ (चूरू) राजस्थान, का यह प्रकाशन सराहना और स्वागत के योग्य है। यह राजस्थानी के साथ ही हिन्दी के क्षेत्र मे भी शब्दार्थ की दृष्टि से उपयोगी है। एतदर्थ विद्वान लेखक और विख्यात समिति साधुवाद के पात्र हैं।

मनोहर शर्मा
अध्यक्ष हिन्दी विश्वभारती,
बीकानेर (राजस्थान)

बीकानेर
दि 21 11-1990 ई

प्रकाशकीय

गत तीन दशकों से समिति ने हिन्दी राजस्थानी की अनेक पुस्तकों का प्रकाशन किए हैं। विक्रय व्यवस्थाओं के नितांत अभाव के बावजूद संस्थान का निरंतर यह प्रयास रहा कि अंचल के श्रेष्ठ साहित्य को प्रकाशित कर लोक के सम्मुख लाया जाए। समिति के कई प्रकाशनों को राष्ट्रीय स्तर की ख्याति प्राप्त हुई है। समिति की बराबर यह चेष्टा भी रही है कि हिन्दी अथवा राजस्थानी की उन पुस्तकों का भी प्रकाशन किया जाए, जिनका महत्व दोनों भाषाओं में समान रूप से प्रतिपादित हो तथा जिससे दोनों भाषाओं की निकटता व परिपूरकता परिभाषित की जा सके। हिन्दी के निर्माण में राजस्थानी का कम योगदान नहीं रहा है। खड़ीबोली के निर्माण-काल से ही राजस्थानी को हिन्दी साहित्य में सम्पूर्ण सम्मान मिला है। आज भले ही राजनीतिक या दूसरे अनेक कारणों से राजस्थानी के विकास को कुछ तथाकथित हिन्दी सेवी अपने लाभ के मार्गों में बाधक मानकर इस प्रान्त की मान्य भाषा का दर्जा दिए जाने में विरोध प्रकट कर रहे हों, परन्तु हिन्दी राजस्थानी के प्राचीन सम्बन्ध समय की धारा में विलीन न होकर अपने सतत प्रवाह को बनाए रखेंगे इसमें संदेह नहीं। आज जब हम दोनों भाषाओं के भाषा-सामर्थ्य का विश्लेषण करते हैं तो स्वतः यह पाते हैं कि एक ही भाषा उदर से जन्मी इन भाषाओं के परस्पर कितने निकट सम्बन्ध हैं।

समिति द्वारा पूर्व प्रकाशित पुस्तक 'प्राचीन शिलालेखों में राजस्थानी भाषा' में भी हमने संस्था द्वारा हिन्दी राजस्थानी भाषा, साहित्य के समन्वित स्वरूप को विश्लेषित करने वाले साहित्य के प्रकाशन की घोषणा की थी। हिन्दी राजस्थानी के श्रेष्ठ लेखक श्री मूलचंद प्राणेश की पुस्तक 'राजस्थानी शब्द सम्पदा' को प्रकाशित कर, संस्था गौरव अनुभव करती है। प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान लेखक ने राजस्थानी की विलुप्त होती जाती प्राचीन शब्द सम्पदा को व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ और प्राचीन साहित्य में उसके प्रयोग को उद्धरण सहित प्रस्तुत कर उसे अक्षुण्ण रखने में उल्लेखनीय योग दिया है।

साथ ही उसने शब्दों के बहुश्रुत और मान्य स्वरूप को रखने के लिए अथक श्रम किया है तथा डिंगल पिंगल के प्राचीन ग्रंथों के अनुसंधाताओं-सम्पादकों द्वारा प्रस्तुत किए गए शब्दों के अनुचित अर्थों को तर्क सम्मत ढंग से शुद्ध एवं सर्व मान्य स्वरूप में रखा है।

राजस्थानी के प्राचीन रासो, वेलि, वचनिका एवं छंद शास्त्र ग्रंथों के टीकाकारों ने अनेक शब्दों के अर्थ अज्ञानवश अपने मन मुताबिक कर दिए थे। यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि राजस्थानी की इस विपुल प्राचीन साहित्य सम्पदा में बहुत कम कृतियों का पुनः सम्पादन या टीकाएं हुई हैं। जिन थोड़ीसी अति प्रसिद्ध कृतियों पर अगर कोई काम हुआ भी है तो वह पूर्व में किए गए कार्य का पिष्टपेषण ही है। पूर्व सम्पादन अथवा टीका में उल्लिखित अशुद्ध और भ्रष्ट स्वरूप को ही अगले टीकाकार ने अपना लिया। ऐसा इसलिए भी हुआ कि ऐसे विद्वज्जनों में बहुधा राजस्थानी के प्राचीन स्वरूप और इस भाषा की प्रकृति को जानने वाले नहीं थे।

प्राचीन शब्दों के सही एवं शुद्ध स्वरूप को प्रस्तुत करना ही लेखक का अभीष्ट है। प्राणशजी के अनेक वर्षों के इस खोज-परक कार्य को प्रकाशित कर संस्था अपने को धन्य समझती है। विद्वान् पाठक पुस्तक को पढ़कर अपने अनमोल सुझावों से अवगत कराएंगे तो लेखक एवं संस्था उनका आभार मानेगी।

श्याम महर्षि
मंत्री
राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति,
श्रीडूंगरगढ़ (राज)

सम्पादकीय

भारतीय मनीषियो ने शब्द शास्त्र को अनन्त और अपार बताया है। व्यक्ति की आयु बहुत थोडी होती है तथा उसमे भी अनेक विघ्न उपस्थित हो जाते हैं अत विद्वज्जनो को चाहिए कि जिस प्रकार हस अपार जल राशि मे से दुग्ध का चयन कर लेता है, उसी तरह शब्द जाल मे से अत्यावश्यक शब्दो का चयन करें।

मुझे विद्यार्थी जीवन से ही शब्दो के स्वरूप और उनके अर्थों के प्रति जिज्ञासा रही है। जब कभी कोई नया शब्द श्रुतिगोचर होता और उसके स्वरूप तथा अर्थ के बारे मे पूरी जानकारी नही मिल जाती तब तक मन को शांति नही मिलती। एक बार मैं श्वेताम्बर तेरापंथी साधुओ के साथ गोचरी ग्रहण करने के लिए चल रहा था तो एक सद्गृहस्थ ने आदर सहित विनय की कि महाराज सा सीपी बहरिये। महाराज सा ने उसका कथन सुनकर अपना एक खाली पात्र उक्त गृहस्थ के सम्मुख रखा तो उसने अपनी घिलोडी मे से दो टीपरी घृत परोस दिया। मेरे मन मे सीपी के प्रति जिज्ञासा जागी। मैंने सकोच वश उक्त साधुजी से तो कुछ नही पूछा, परन्तु उस गृहस्थ से सीपी के सम्बन्ध मे जानकारी चाही। उक्त गृहस्थ साधारण पढा लिखा व्यक्ति था, अत उसके प्रत्युत्तर (जो परिमाण से सम्बन्धित था) से मेरी जिज्ञासा शांत नही हुई। कई वर्षों बाद जब मैं लघु सिद्धान्त कौमुदी को पढ रहा था तो उक्त सीपी का समाधान मिला। वस्तुत यह शब्द संस्कृत का सर्पिन् था, जो प्राकृत मे 'सिप्पी' होता हुआ वर्तमान में सीपी हो गया, जिसका अर्थ होता है 'घृत'।

शब्दो के प्रति विद्यार्थी जीवन से ही जो जिज्ञासु वृत्ति मेरे मस्तिष्क मे पनपी वह उत्तरोत्तर बढती ही गई और उसमे तीव्रता आई राजस्थानी भाषा मे शब्दो पर अनधिकृत व्यक्तियो द्वारा मनमाने अर्थ थोप देने से।

आज से पूर्व राजस्थानी भाषा के अनेकानेक ग्रथो का सम्पादन प्रकाशन हुआ है। उस समय राजस्थानी भाषा का कोई प्रामाणिक कोश उपलब्ध नही था। अमरकोश की शैली पर रचे हुए पाच-सात कोश ग्रथ अवश्य थे, परन्तु वे पुराने बस्तो-बुगचियो मे कैद पडे थे। अधिकतर विद्वानो

का ध्यान उधर गया ही नही। अंग्रेजी और हिन्दी के माध्यम से शिक्षित विद्वान देशज शब्दों की व्युत्पत्ति भी संस्कृत शब्दों में खोजते और उससे मिलते-जुलते (ध्वनि साम्य के आधार पर) अनर्थ की सृष्टि कर देते।

मेरे स्वाध्याय काल में मुझे राजस्थानी भाषा के गौरवशाली ग्रन्थों को देखने का अवसर मिला। जिन विद्वानों ने उक्त ग्रन्थों का सम्पादन किया उनमें से अधिकांश उत्तर प्रदेशीय हिन्दी विद्वान रहे हैं जिन्होंने राजस्थानी भाषा को हिन्दी की एक उपभाषा (बोली) मानकर ठेठ राजस्थानी शब्दों की व्युत्पत्ति संस्कृत के आधार पर खोजने की चेष्टा की और स्थान स्थान पर चूके। कुछेक विद्वानों ने पाइअ सद्द महाण्णव के आधार पर ध्वनि साम्य को देखकर अर्थ कर लिया। उस अर्थ की संगति उक्त शब्द के साथ बैठती हो अथवा नहीं बस उन्होंने लिख मारा और अपने मन को सान्त्वना दे ली। कतिपय विचित्र अर्थों का आप भी अवलोकन कीजियेगा—

रतनू वीरभाण कृत 'राजरूपक' एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक काव्य कृति है। इसका सम्पादन स्वनामधन्य स्व० पं० रामकरणजी आसोपा ने किया है। पाठकों के लाभार्थ स्थान स्थान पर हिन्दी टिप्पणियाँ एवं भावार्थ भी दिया है। इस प्रयत्न में वे स्थान स्थान पर चूके हैं परन्तु एक स्थान पर तो हद ही कर दी। यथा—

'तित आवत मेन किसे न खडा।' पृ० 33

पण्डितजी ने इस पद्यांश का हिन्दी अर्थ किया है—पृथ्वी को घेरे मनुष्य किसानों की तरह खड़े हैं। आश्चर्य की बात यह है कि अट्ठारहवीं शताब्दी के काव्य में चारण कवि ने मेन अंग्रेजी शब्द का प्रयोग किया! अनर्थ की सृष्टि इसी तरह होती है। पूर्वापर सम्बन्ध पर बिना सोचे समझे ध्वनि साम्य पर अर्थ लिख दिया। उक्त पद्यांश में मेन शब्द का प्रयोग पर्वत के अर्थ में किया है। यथा पृथ्वी को घेरे हुए पर्वत इस प्रकार खड़े हैं मानो सेना खड़ी हो। हाथियों की सेना को पर्वत की उपमा देना राजस्थानी साहित्य में बहु प्रचलित है।

'ढोला मारू रा दूहा' राजस्थानी भाषा की एक अद्वितीय काव्य कृति है। इसका सर्वप्रथम सम्पादन सम्पादक त्रय (सर्वश्री ठा० रामसिंह जी, सूर्यकरण जी पारीक और स्वामीजी) ने किया है। तत्पश्चात उनकी देखा देखी अनेक विद्वानों ने इस कार्य को हाथ में लिया परन्तु जो त्रुटियाँ प्रथम सम्पादन में रह गई थीं वे आगे से आगे चलती रहीं। किसी ने भी उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। कई विद्वानों ने इस सम्पादन पर समालोचनात्मक लेख भी लिखे परन्तु उक्त त्रुटियों के सुधार के स्थान पर भ्रम ही अधिक फैला।

अनेक शब्दार्थ सम्बन्धी त्रुटियों में से एकाध का अवलोकन कीजिए—

घम्म घमतइ घूघरइ, पग सोनेरी पाळ ।
माहू चाली मंदिरे, जाणि छूटी छळाळ ॥539॥

इस पद्य में प्रयुक्त 'छळाळ' शब्द को सम्पादक द्वय ने देशी नाममाला (3 27) में प्रयुक्त छळाळ∠अप छिछाल' मानकर इसका अर्थ 'फ वारा कर दिया जिसकी कोई संगति नहीं है। वस्तुत यह शब्द हाथी का पर्याय वाची है और प्रसंग के अनुसार यही अर्थ ठीक बैठता है।

डा मोतीलाल मेनारिया द्वारा संकलित तथा सम्पादित डिंगल में वीररस' नामक पुस्तक विभि न उच्च कक्षाओं के पाठ्यक्रम में सम्मिलित है। पृथ्वीराज रासो का थोड़ा सा भाग भी इस संकलन में सम्मिलित किया गया है। प्रसंग स य वर्णन का है। यथा—

तिनमा कटक त्रिविध घडा' एक एक पग अनुसर। (2 25)

प्रस्तुत पद्यांश में प्रयुक्त त्रिविध घडा का श्री मेनारियाजी ने एक विचित्र अर्थ प्रकल्पित किया है, जिसको देखने पर हंसी रोके नहीं रुकती। यथा—

त्रिविध घडा अर्थात्' गर्मी के दिनों में शिवजी की लिंग मूर्ति के ऊपर लकड़ी की तिपाई (त्रिपादिका) बना कर उस पर जल का घड़ा रख देते हैं। उस घड़े के पेंदे में एक छोटा सा छेद बनाकर उसमें कपड़े की बत्ती डाल देते हैं, जिससे थोड़ा थोड़ा पानी लिंग मूर्ति पर गिरता रहता है।

डॉ मेनारियाजी ने प्रसंग पर ध्यान ही नहीं दिया। त्रिपादिका स्थिर रहने वाला उपकरण है। उसकी समानता चलती हुई सेना से कैसे की जा सकती है? वस्तुत घडा' श द का अर्थ सेना न जानने पर उक्त घपला हुआ है अ यथा पद्यांश के अर्थ में कोई दुरूहता नहीं है। त्रिविध+घडा=तीन प्रकार की सेना।

इसी प्रकार क्षेत्रीय विशेषताओं की जानकारी के बिना मनमाना अर्थ प्रकल्पित कर लिया जाता है। डा हजारीप्रसादजी द्विवेदी संत साहित्य के उद्भट विद्वान रहे हैं। उ होंने नाथ सिद्धों की बानियाँ नामक पुस्तक सम्पादित कर के विद्वज्जनों के सम्मुख प्रस्तुत की। पर तु उक्त बानियों में व्यवहृत अनेक शब्द ठेठ राजस्थानी के हैं जिनको जाने बिना सही अर्थ नहीं किया जा सकता। उक्त बानियों में एक पद्यांश है—

चाम की कोथली, चाम का सूवा।
तास की प्रीत कर सब जग मूवा ॥ (34)

प्रस्तुत पद्यांश में प्रयुक्त कोथली' का अर्थ कोठरी और सूवा का अर्थ 'शुक

लिया है। इस प्रकार अर्थ होगा— 'चमड़े की कोठरी व चमड़े का मुख।' इससे कथा का तात्पर्य सिद्ध नहीं होता। चमड़े की कोठरी में चमड़े का निर्जीव मुख बिठा देने से काम नहीं चलेगा। वस्तुतः कोथली का अर्थ थैली और 'मुथा' का अर्थ होगा—इसी नाम का लोहे का उपकरण (सूयी का पुल्लिंग) यह बोरियों की सिलाई के लिए काम में लिया जाता है। बात का तात्पर्य इस रूपक के द्वारा पुरुष एवं स्त्रियों के प्रजननांगों के बारे में बताना है, जिनकी प्रीति से सारा संसार चल रहा है।

इस प्रकार राजस्थानी ग्रन्थों के सम्पादन में स्थान-स्थान पर त्रुटियाँ रही हैं और तब ऐसी भ्रम भीत का निर्माण हो गया है जिसका निराकरण सहज में ही नहीं हो सकता।

अनेक भारतीय विद्वानों के साथ-साथ इन पंक्तियों के लेखक ने भी पर्याप्त श्रम करके विभिन्न राजस्थानी ग्रन्थों पर समालोचनात्मक लेख लिखे तथा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करवाए। इस प्रकार की विज्ञप्तियों ने सराहना भी की परन्तु इस प्रकार के पुस्तक रूप में विद्यार्थियों एवं जिज्ञासुओं को कोई लाभ नहीं हुआ। अनेक विद्वानों एवं सुहृदों ने राय दी कि इस प्रकार का प्रयास यदि पुस्तकाकार में लोगों के सम्मुख रखा जाये तो राजस्थानी भाषा के प्रेमियों एवं विद्यार्थियों को बहुत लाभ मिल सकता है। प्रस्तुत पुस्तक इसी भावना का मूर्त स्वरूप है। राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति, श्रीडूंगरगढ़ के सक्रिय कार्यकर्ता श्री श्याम महर्षि एवं श्री चेतन स्वामी के सतत प्रयत्नों के परिणामस्वरूप यह सामग्री पुस्तकाकार में साहित्य-जगत् के सम्मुख आ सकी है अतएव ये दोनों महानुभाव धन्यवाद के पात्र हैं। साथ ही डॉ. मनोहर शर्मा का आभार किन शब्दों में प्रकट करूं जिन्होंने अपने बहुमूल्य समय में से समय निकालकर प्रस्तुत पुस्तक की विद्वतापूर्ण भूमिका लिखी।

प्रस्तुत पुस्तक की सामग्री संकलन में जिन विद्वानों एवं ग्रन्थों का सहयोग लिया गया है उनका यथास्थान यथास्थान उल्लेख कर दिया गया है। फिर भी अनेक ऐसे महानुभाव भी हैं जिनका परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप में उक्त सामग्री चयन में योगदान रहा है ऐसे सभी महानुभावों का मैं हृदय से आभार स्वीकार करता हूं।

15 अगस्त 1991 (स्वतन्त्रता दिवस)
लाडनूं (बीकानेर)

मूलचन्द 'प्राणेश'

अउभकइ

'अउझकड़ शब्द 'ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम से प्रकाश में आया। यथा—

> सउदागर राजा तिहा, बइठा मंदिर मझ।
> मारू दीठी 'अउझकइ', जाणि खिवी घण सझ॥
>
> —ढोला मारू रा दूहा, 85

सम्पादक त्रय (ठा रामसिंह जी, पारीकजी व स्वामीजी) ने प्रस्तुत अउभकइ शब्द का 'अचानक भरोखे मे' हिन्दी अर्थ किया है, जिससे कवि का तात्पर्य प्रकट नही होता है।

'अउझकड़' शब्द वतमान में भी प्रचलित है और इसका 'चौंकने' के अर्थ में प्रयोग किया जाता है। उपयुक्त दोहे के उत्तरार्द्ध का हिन्दी भावार्थ होगा—'(सौदागर ने) मारू को देखा तो चौंक उठा मानो सध्याकालीन बादलो मे बिजली चमकी हो।

अन्य उदाहरण—

> माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा राण प्रताप।
> अकबर सूतो ओझक जाण सिराण साप॥
>
> —प्रसिद्ध राजस्थानी दोहा

अखियात

'अखियात शब्द' वचनिका राठौड़ रतनसिंघ जी महेसदासोत री के माध्यम से चर्चा म आया है। यथा—

अखियात ऊपर। 51/12

—वचनिका पृ 124

वचनिका के सपादक श्री रघुसिंहजी मनोहर ने 'अखियात ऊपर' का हिन्दी भावार्थ किया है। आपको महान कीर्ति सदा बनी रहे। आगे इसी

शब्द की व्याख्या प्रस्तुत की है—'अखियात (स आख्याति) सुयश, कीर्ति, प्रसिद्धि।'

श्री काशीरामजी शर्मा ने उपर्युक्त अर्थ को अस्वीकार करते हुए लिखा है— उदाहरण दिये हैं उनसे कहानी अर्थ की पुष्टि होती है। फिर कहते हैं—शर्मा ने इसका कहानी (मात्र) अर्थ किया है, जो भ्रान्त है। वास्तविकता यह है कि संस्कृत में विख्यात प्रख्यात और ख्यात का लाक्षणिक प्रयोग हो गया है यद्यपि इनका भी वाच्यार्थ है वह व्यक्ति जिसकी कहानी सब कहते हैं चर्चा सब करते हैं। पर आख्या आख्यात और आख्यान तो वाच्यार्थ में ही प्रयुक्त होते हैं। व्याख्या, व्याख्यात और व्याख्यान भी प्रसिद्धि का लक्ष्यार्थ नहीं पा सके। अपनी पुस्तक के पृष्ठ 7 पर वे स्वयं लिखते हैं—अखत=कहा, फिर पृष्ठ 18 पर लिखा है आखो=कहो, कहताथो। 352 पर आख= कहती है। पंजाबी में आज भी संस्कृत की 'आ' उपसर्ग वाली ख्या धातु का एकमात्र अर्थ कहना होता है। प्रसिद्धि या यश' अर्थ नहीं होता। (वचनिका का सम्पादन पृ 68)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है अखियात का शाब्दिक अर्थ तो 'कहानी' ही होता है और लाक्षणिक अर्थ में सुयश कीर्ति प्रसिद्धि इत्यादि भी होता है।

अन्य उदाहरण—

1 अमर आगरे अखियात उबारी भडजीपण ब्रद भारी।
—श्री सारस्वत डिंगळ गीत पृ 33

2 भरमल हरे मेछाण दळ भाजिया
राव र काम अखियात राखी।
—रा वी गी स भा 1 पृ 171

3 करण अखियात चढियो भला काळमी
निबाहण वयण भुज वाधियोनेत।
—बांकीदास ग्रंथावली भा 3 पृ 99

अणवर

अणवर शब्द महादेव पार्वती री वेलि के माध्यम से चर्चा का विषय बना। यथा—

अणवर वींद टटियो आयउ।
—महादेव पार्वती री वेलि 132

प्रस्तुत पद्यांश में प्रस्तुत 'अणवर' को सम्पादक श्री रावतजी सारस्वत ने 'अनुवर' बनाया है जो भाषा की प्रकृति एवं प्रसंग की अनुकूलता के कारण उपयुक्त नहीं है। 'अणवर' दुल्हे का 'अंतरंग साथी' एवं 'अनन्यमित्र' होता है। दुल्हे की भांति दुल्हिन के साथ भी 'अणवरी' रहने का उल्लेख मिलता है।

अन्य उदाहरण—

1 वर ईसर जगनाथ 'अणवर'।

—महादेव पार्वती री वेलि, 284

2 करनाजळ 'अणवर' कहे बड़जानी बानेत।

—सिढिया जग्गा, वचनिका, पृ 244

3 पुगरण जान सेन है सासति, 'अणवर' भायद किसन अगाहा।
रयण तणी घड साम्हो रतनो मिळियो मोड बधे रिण माह॥

—राठौड़ रतनसिंघ री वेल पृ 52

अणुराव

'अणुराव' शब्द 'ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम से चर्चा का विषय बना। यथा—

ए सारस कहिजइ पसु पखी केरा राव।
उव बोल्या मर ऊपरइ था कीधी अणुराव'॥ दो स 52

—ढोला मारू रा दूहा पृ 172

ढोला मारू के सम्पादक श्री शम्भुसिंहजी मनोहर ने 'अणुराव' का अर्थ 'अनुकरण' किया है जो अनुमानाश्रित है। 'अणुराव' का वास्तविक अर्थ होता है 'दुख, संताप'। उपर्युक्त उद्धरण में यही अर्थ अभिप्रेत है। मारवणी उक्त सारसों का 'अनुकरण' कभी कर सकती थी। हाँ उनके बोलने पर उसे 'दुख' अवश्य उत्पन्न हुआ।

अन्य उदाहरण—

1 थांव कर अणुराव' कोई तिगतांरो कर।

—राजस्थानी नीति दूहा 113

अलोप

'अलोप शब्द' महादेव पारवती री वेलि के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

ज्योति प्रकास अलोप जग।

—महादेव पारवती री वेलि, 4

प्रस्तुत कृति के सम्पादक श्री रावतजी सारस्वत ने 'अलोप जग' का हिंदी अर्थ 'ससार म अलुप्त रहता है'। किया है जो इसका वास्तविक अर्थ नहीं है।

'अलोप' का अर्थ 'अदृश्य होना मरना लुप्त होना' होता है। अलोप हुयग्यो का अर्थ ससार से उठ गया लिया जाता है। भगवान शकर भी इस ससार को लुप्त करने वाले, विनाश के देवता हैं अत अलोप जग का अर्थ 'भगवान शकर' भी किया जा सकता है।

असराळ

असराळ शब्द प्रद्युम्न चरित के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

भविषउ दुरिउ हरइ असराळ।

—प्रद्युम्न चरित, पृ 6

प्रस्तुत काव्य के सम्पादक श्री कस्तूरचन्दजी कासलीवाल ने 'असराळु' का हिन्दी अर्थ निरन्तर किया है जो प्रसगानुकूल नही है। इस असराळ शब्द का वास्तविक हिन्दी अर्थ बहुत भयकर होता है।

अन्य उदाहरण—

1 वरसहि बाण सर असराळ।

—प्रद्युम्न चरित पृ 281

2 भेरी तूर बाजइ 'असराळ।

—वही, पृ 580

3 असपति तणइ दळि असराळ'।

—राव जतसी रो छद (अप्रकाशित)

4 यहु मदन अति 'असराळ ।

—ऐतिहासिक जन वा य सग्रह, पृ 90

रूप भेद—असराळु

आजणी

'आजणी' गब्द का प्रयोग 'बीसळदेव रास म हुआ है । यथा—

'आजणी काइ न सिरजी करतार ।

—बीसळदेव रास, 97/5

'बीसलदेव रास' के सम्पादक डा तारकनाथ अग्रवाल ने 'आजणी' शब्द का हिन्दी अर्थ 'अजन'—सुमा दिया है जो सवथा भ्रात है। सपादक महोदय ने कदाचित् से 'अजन' को उक्त शब्द का रूपभेद मान लिया है, परन्तु यहां पर 'अजन का कोई प्रसग हो नहीं है।

वस्तुत 'आजणा जाटो का एक भेद है। 'ऊमा जिका 'आजणा, बठा जिका जाट ।उक्ति से यह शब्दार्थ स्पष्ट हो जाता है। प्रस्तुत उदरण म प्रयुक्त 'आजणी' स्त्रीवाची है, अत अथ होगा कृषक स्त्री', 'जाटनी'। उक्त उद्धरण म प्राथना की गई है—'भगवान ! तुमने मुझे 'जाटनी' क्या नही बनाया ।

आइन्या

'आइन्या शब्द महादेव पारवती री वेलि के माध्यम से प्रकाश म आया है। यथा—

ईसर तणी 'आइन्या' इसडी ।

—महादेव पारवती री वेलि, 87,89

'वेलि' के सम्पादक श्री रावतजी सारस्वत ने 'आइन्या' शब्द का हिन्दी अथ—प्रताप किया है जो शब्द का वास्तविक अथ नहीं है। 'आइन्या' शब्द का हिन्दी अथ 'मर्यादा' या 'आज्ञा होता है । वतमानकालिक गुजराती

भाषा मे न वा ग्न जसा उच्चारण किया जाता है। कदाच 'आशा' का ही 'आग्या 7 आइ या, आया वना होगा।

अन्य उदाहरण—

1 आइ्यामटि अठट ताइ आई।

महादेव पावती री वेलि 188

आगमछ

'आगमछ शब्द वेलि महादेव पारवती री के माध्यम से प्रकाश मे आया है। यथा—

जोसी जिके 'आगमछ जाणइ।

—महादेव पारवती री वलि, 344

'वेलि' के टीकाकार श्री रावतजी सारस्वत ने आगमछ शब्द का हिन्दी अथ शास्त्र दिया है। कदाच सम्पादक महोदय का ध्यान सस्कृत के 'आगम शब्द की ओर चला गया दिखाई देता है। वस्तुत 'आगमछ' शब्द का हिन्दी अथ भविष्य होता है। ज्योतिषी भविष्य की बात ही बताया करते हैं तभी उनकी पूछ होती है। वतमानकालिक बोल चाल की भाषा मे यह शब्द आगूछ अथवा आगूच हो गया है।

आडग

'आडग शब्द वलि श्री कृष्ण रुक्मिणीरो के माध्यम से चर्चा मे आया है। यथा—

कठठे वे घटा करे काळाहाणि
सम्हे आम्हा साम्हइ।
जोगिणी आवइ 'आडग' जाणे,
वरसइ रगत बेपुड वहइ॥

—वेलि, 117

वेलि के सम्पादक थोदीभितजी ने आडग शब्द का हिन्दी अथ 'चिह्न' दिया है, जिससे वक्ता का तात्पय प्रकट नहीं होता है। वेलि की सुबोध मजरी मे इसका अथ 'वषण समय' दिया है तथा वनमाली वल्ली व नारायण वल्ली या व दो टीकाओ म 'आडग=वरसिवा रा समय जाणि' अथ दिया है जो युक्तियुक्त है।

'आडग वर्षा से पूव के मटाण को कहते हैं। इसे वर्षा का पूव रूप' भी कहा जा सकता है। वेलि के सम्पादक त्रय (ठा रामसिहजी, पारीकजी व स्वामीजी) भी 'आडग' का हिन्दी अथ 'वरसन को उद्यत, वर्षा सूचक' करते हैं, जो मूल अथ के पर्याप्त निकट है। 'आडग' का सागोपाग अथ प्रकट करने वाला शब्द हिन्दी कोशो मे उपलब्ध नहीं है, अत व्याख्या से ही काम चलाना पडता है।

आडो

'आडो' शब्द देशीय शब्द 'अड्ड' से बना है, जिसका अथ होता है— जो आडे आता हो, बीच म बाधक होता हो वह (पा स म प 27)। राजस्थानी साहित्य में इस शब्द का प्रयाग प्रचुर मात्रा मे हुआ है। इसी शब्द के आधार पर बना आड शब्द रुकावट, अवरोध का अथ देता है।

अन्य उदाहरण—

1 जसवत सूण जवाब, आगा कहियो एम।
मो था आडो मेल्हियो, कहा जायनु केम ॥42
—वचनिका रा रतनसिघजीरी, पृ 73

2 औरगसाह दळार 'आडो, लाडो जसवत धणी लड।
—प्रा रा गी, भा 2, पृ 112

3 आवियो जत ससमाथ 'आडो ।
—गीत मजरी, पृ 15

4 आम पडता हुव सूप 'आडो ।
—वही, पृ 53

5 आडो' दिल्ली फोजा लाहा माडजे अनोप।
—वही पृ 69

6 'आडो' प्रेम न आवै।

—रघुवर जसप्रकास, प 287

7 आडइ काई मन थाय।

—कान्हड दे प्रबध, प 16

8 एक आ लोटई आडो' पडो।

—वही प 64

9 आडा डूगर बन घणा।

—ढोला मारू रा दूहा, प 69

10 आदर देई 'आडा' फिरिया।

—वही, प 268

11 आडा जडिया सजड किमाड।

—वही, परिशिष्ट

आदरई

आदरइ शब्द राजस्थानी साहित्य एव बोलचाल म समान रूप से प्रयुक्त होता है। परन्तु लोग इस आदर सत्कार से जोड कर अथ का अनथ करते हैं। परन्तु प्रस्तुत शब्द का हि दी अथ 'स्वीकार करना' ही होता है।

अन्य उदाहरण,

1 पापी पाप बुद्धि 'आदरी ।

—कान्हडदे प्रबध, पृ 200

2 आपरा वयण हु थाणी नह 'आदरू , आदरू वयण जोराणवाळ।

—प्रा रा गी भाग 1, पृष्ठ 74

3 सती धरम साचउ आदरू ।

—कान्हडदे प्रबध, प 149

4 बीजो बीज मवि आदरू ।

—ढोला मारू रा दूहा, पृ 263

5 अधिकी मयति जुगति 'आदरइ

—वही, पृ 264

6 ओषध जत्र मत्र 'आदरइ',
मरणा पुत्र तणा बहु मरइ ।

—वही, परिशिष्ट

आदरणो

आदरणो क्रिया पद का राजस्थानी साहित्य में प्रचुर प्रयोग हुआ है। कतिपय विद्वान इस शब्द में 'आदर' देखकर 'सेवा-सत्कार' अर्थ कर देते हैं, जो अयुक्त है। 'आदरणो' शब्द का हिन्दी अर्थ 'स्वीकार करना' होता है और यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

अन्य उदाहरण—

1 आपरा वयणह् पाणो नह 'आदरू'
'आदरू वयण जो राण वाळे ।

—प्रा रा गी, भा 1, पृ 74

2 सती धरम मावतउ 'आदरू' ।

—कान्हड़दे प्रबंध, पृ 149

3 पापी पापबुद्धि 'आदरी ।

—वही, पृ 200

3 मलिके तो मनि हूइ 'आदरयउ'
जमलउ दुरग तलहटी करीयउ ।

—वही, पृ 193

4 बीजो बीज मनि आदर ।

—ढोला मारू रा दूहा, 263

5 अधिकी मगति जुगति 'आदरइ' ।

—वही पृ 264

6 औषध जत्र मत्र आदरइ, मरणा पुत्र तणा बहु मरई ।

—वही, परिशिष्ट

7 मिथ्या महामोय 'आदर' मुनसर ।

—प्रा रा गी, भा 7, पृ 102

आधोफरइ

आधोफरइ शब्द ढोला मारू रा दूहा के माध्यम से चर्चित हुआ है। यथा —

> आदावळ आधोफरइ, एवड माँहि असान।
> तिण अजाण ढोलइतणइ मूरम मागइ मन॥
>
> —ढोलामारू रा दूहा, 439

प्रस्तुत दोहे म प्रयुक्त 'आधोफरइ' शब्द का सपादक त्रय श्रीसूर्यकरणजी पारीक, श्री ठा रामसिंहजी, श्री नरोत्तमदासजी स्वामी—ने 'आडवले पहाड की ढालू जमीन पर' अर्थ किया है, जो समीचीन नही है। इस शब्द का सही अर्थ होता है—'बीच अथवा मध्य' तदनुसार उपर्युक्त पद्यांश का अर्थ होगा—आडेवले (अर्बुद) पहाड के मध्य रेवड म बठे हुए।

अन्य उदाहरण—

1 यहु ससार धार में डूबे अधफर थाकि रहे।

—कबीर ग्रथावली, पृ 310

2 डूगरडा आधोफरि सगळ सीयळी वाय।

—चरचरिया (अप्रकाशित)

3 'आधोफरइ मध्य उपसता।

—वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री, 203

4 धरा व्योम आधोफरै रहि पज्ज।

—सिद्धियजणा वचनिका, पृ 8

आरणि

'आरणि शब्द वेलि श्री कृष्ण रुक्मिणीरी के माध्यम से प्रकाश मे आया है। यथा—

> रुकमइयउ वेलि तपन आरणि रण,
> पसि रुक्मिणी जळ प्रमान।
>
> —वेलि, 132

आरणि' शब्द का हिन्दी अर्थ सम्पादक त्रय (ठा. रामसिंहजी, पारीकजी व स्वामीजी) तथा श्री दीक्षितजी 'एहरन पर' किया है, जो समीचीन नहीं है। ऐरण (वा अयसघन) होता है, उस पर रखकर लोहे को पीटा तो जा सकता है, परन्तु तपाया नहीं जा सकता। सम्पादक महोदयों का ध्यान इस ओर गया ही नहीं। वास्तव में उपर्युक्त उद्धरण में प्रयुक्त 'आरणि' शब्द का हिन्दी अर्थ 'लुहार की भट्ठी' लिया जा सकता है। वर्तमान कालिक बोल-चाल की भाषा में भी 'आरणि' का यही अर्थ ग्रहण किया जाता है।

अन्य उदाहरण—

1 मन 'आरण' में बिलै कोयला।

—गोरखबानी, पद 6

2 रिण संग्राम रूप 'आरणि' लोहाररउ चूल्हउ तेहनइ विषइतप्यउ रोमइ ज्वलित दक्मियउलोहरी परि देखि।

—नारायणवल्ली टीका (अप्रकाशित)

3 घर घाव बजे लठ आठ घड़ी, घर 'आरण' ज्यों घण रीठ पड़ी।

—राजरूपक, पृ 36

आरिसइ

'आरिस शब्द' 'ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

इसइ 'आरसइ' मारुवी, सूनी सेज विछाइ।
साल्ह कुंवर सुपनइ मिल्यउ, जागि निसासउ खाइ॥

—ढोला मारू रा दूहा, सं. 14

आरसइ शब्द को लेकर ढोला मारू के सम्पादकों ने विभिन्न प्रकल्पनाएं की हैं जो प्रसंगानुमोदित नहीं है। सम्पादक त्रय (ठा. रामसिंहजी, पारीकजी व स्वामीजी) के पश्चात् श्रीरामसिंहजी मनोहर ने 'ढोलामारू' पर पर्याप्त परिश्रम किया है परन्तु शब्दार्थों के मामले में वे स्थान स्थान पर चूके हैं। वे प्रस्तुत 'आरसइ' शब्द का हिन्दी अर्थ 'अवस्था' करते हैं, जो प्रसंगानुकूल नहीं है। इस शब्द का वास्तविक अर्थ 'चिह्न' अथवा 'लक्षण' होता है।

प्रस्तुत उद्धरण से पूर्व के दोहे में वे चिह्न वर्णित है। यथा—

हंस चलण कदळीह जघ कटि केहर जिम गीण।
मुख ससिहर खजरनयण, कुच श्रीफळ, कंठ वीण।।

'मारवणी' के शरीर मे उपयुक्त 'चिह्न' प्रकट हुए हैं, जिनका संकेत प्रस्तुत उद्धरण मे किया गया है। अर्थात्— इस प्रकार के चिह्न अथवा लक्षणों से युक्त मारू सेज विछावर सोई।'

अन्य उदाहरण—

1 'आरिख' लाज इद रा।

—राजरूपक, पृ 644

आलोच

'आलोच' शब्द महादेव पारवती री वेलि के माध्यम से चर्चा मे आया है। यथा—

'आलोच करै परवार आलियउ।

—महादेव पारवती री वेलि, 77

वेलि के सम्पादक श्री रावतजी सारस्वत ने आलोच शब्द का हिन्दी अर्थ 'सोच' दिया है जिससे भाव स्पष्ट नहीं होता है। वस्तुत आलोच शब्द का व्यवहार 'मत्रणा' के लिए होता है और उपयुक्त पद्यांश में यह शब्द इसी अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

अन्य उदाहरण—

1 'आलोच आपो आप स।

—महादेव पार्वतीरी वेलि, 53

2 कियो आप स आप 'आलोच' वा है।

—नागदमण 108

आवगो

आवगो शब्द राजस्थानी काव्यों में यथावसर प्रयुक्त हुआ है। इसका अर्थ 'समग्र समस्त पूरा का पूरा' होता है। काव्यों मे व्यवहृत 'आवगो' का

अथ उपर्युक्त 'समग्र' भाव को ही व्यक्त करता है। यथा—

1 सारी घर मोगवि गढ साजा,
रिण 'आवगो' सूझदे राजा ।।29।।
—वचनिका राठौड रतनसिंघजी म दा री, पृ 95

2 घाव मरता 'आवगो' वीत्यो जोबन मूस।
—वीरसत सई,

3 उवेलण परीभव तणै छळ आवगो'
ऊजळा सत्री यार मुजा आज।
—गजगुण रूपक बंध परिशिष्ट, पृ 270

आवट्टइ

'आवट्टइ' शब्द 'अचलदास खीची री वचनिका' के माध्यम से चर्चा मे आया है। यथा—

आलम अचल सेन 'आवट्टइ'
कनक जिहीं रहि रहि कसवट्टइ ।।
—अचळदास खीची री वचनिका पृ 56

वचनिका के सम्पादक श्री भूपतिराम साकरिया ने 'आवट्टइ' का हिन्दी भावार्थ 'टकराना' किया है। उद्धरणोक्त पद्यांश का हिन्दी भावार्थ इस प्रकार किया गया है—'बादशाह और अचलदास की सेनाएं इस प्रकार टकराती थी जैसे सोने को रह रहकर कसौटी पर कसा जाता है।'

मूलत 'आवट्टइ' शब्द प्राचीन भाषा काव्यों तथा वर्तमानकालिक बोलचाल की भाषा म समान रूप से व्यवहृत हुआ है और इसका अर्थ होता है— धीरे धीरे कम होना, नष्ट होना।' राजस्थानी का 'औटावणों' (व्युत्पन्न) और हिन्दी का 'औटाना' इसी शब्द के रूप हैं। धीरे धीरे कम होना' एक विशेष स्थिति को प्रकट करता है यद्यपि इसे 'नष्ट होना' कहा जा सकता है परन्तु मूल शब्द का भाव यह नहीं है।

1 वायुसुण सण 'आवट ।
—प्रा रा मी भा 7, पृ 102

2 जहा उपज तहा फिरि आवट ।

—गोरखबानी, पद 2

3 जब मही 'आवटसी सूरम टळसी ।

—नाथ सिद्धा की बानिया, प 13

आसनउ

'आसनउ' शब्द 'बेलि श्री कृष्ण रुक्मिणीरी' के माध्यम से प्रकाश मे आया है । यथा—

चल पत्र पीयउ दुज देव चित
सकइ न रहति न पूछि सकत ।
इम आवइ जिम जिम सु आसनउ,
तिम तिम मुख धारणा तवत ॥

—बेलि दाला 71

'आसनउ' शब्द का अर्थ वनमाली वल्ली बा बा (अप्रकाशित) मे इस प्रकार दिया गया है । ज्यु-ज्यु ते विप्र आसनउ ढूकडउ आवइ तिम तिम अर्थात् 'आसनउ' का हिन्दी अर्थ निकट पास होता है ।

अन्य उदाहरण—

1 काळ आसनु आणेवि माणक्सूरि
नयर वछूना जाए विगुण मणि गिरि ।

—कछूली रास

2 'आसन्नी' तहि ऊघडिय पाथर केरिय खान ।

—आबूरास 33

3 आसन्नउ आगळि सोहइ सड
पढिहार नदी चडी प्रचड ।

—सदयवत्सवीर प्रबध 219

4 आडेवळे आघो करइ, एवड माहि असन्न ।
तिण अजाण ढोलइ तणइ सूरम भागउ मन ॥

—ढोला मारू रा दूहा, 418

आहचइ

आहचइ शब्द 'महादेव पार्वती री वेलि' के माध्यम से चर्चा मे आया है। यथा—

'आहचइ' चढी देखण आवास।

—महादेव पार्वती री वेलि, 315

सम्पादक श्री रावतजी सारस्वत ने 'आहचइ' शब्द का अर्थ 'ऊचे' बताया है जो प्रसगानुकूल नही है। डिंगळ का यह बहुप्रचलित शब्द है जिसका अर्थ होता है 'शीघ्रता से'।

अन्य उदाहरण—

1 गाजइ सादूळउ 'आहचइ' लइसास।

—महादेव पार्वती री वेलि 290

2 ताइ 'आहचइ' दीघ वधाई आय।

—वही, 294

3 सतुनीबळ घट्ट मेल्हिया 'आहचइ'।

—वही, 299

4 'आहचइ' सकति पूछिया ईसर।

—वही, 370

आहुटि

'आहुटि' शब्द वेलि क्रिसन रुकमणी री के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

ऊमी सद सखिए प्रससित अति,
इनारथ प्रिय मिलन वृत।
मवीसज द्वारि विधि 'आहुटि'
श्रुत देहरी परि समाश्रित॥

—वेलि, द्वाला 165

वेलि के मध्य टीकाकार श्री दीक्षितजी ने 'आहुटि' शब्द का हिन्दी अर्थ आहट किया है, जो भ्रांत है।

उपयुक्त उद्धरण म आये शब्द 'आहुटि की व्याख्या करते हुये 'सुबोध मजरी' सस्कृत टीकाकार ने उल्लेख किया है—

'पश्चाद्वलित्वा पुनस्तत्रगतुकामा भवति ति कुन लज्जा निदान तथा वनमाली वल्ली व नारायण वल्ली बा व बा (अप्रकाशित) टीका म आहुटि पाछी वळिनई' लिखा है, जो सही अथ है। उक्त प्रसग मे 'आहट लेने की गुजाइश नही है। वे सखिया उत्कण्ठा वश जहा पर सेज बिछी थी, उस द्वार पर जाकर देखना चाहती थी परन्तु कुल लज्जा वश वे ऐसा न करके द्वार पर से वापस लौट आई तथा भीत के पास कान लगाकर सुनने लगी। अतएव 'आहुटि का हि दी अर्थ लौटना ही उचित है।

अय उदाहरण—

1 पथिक वधू पथ दृष्टि 'अहुट्टि'।

—पृथ्वीराज रासो 11/33

उनिहार

उनिहार शब्द 'पृथ्वीराज रासो के माध्यम से प्रकाश म आया है। यथा—

पृथ्वीराज उनिहार इनि।

—पृथ्वीराजरासो 9/53

प्रस्तुत रासो के सम्पादक डा वी पी शर्मा ने उनिहार का हिन्दी अथ 'अनुहार करके देखकर किया है जो प्रसगानकूल नही है। 'उनिहार शब्द का वास्तविक अथ आकृति समान' होता है। राजस्थान म बोल चाल की भाषा म भी–देख्या थारो उणियारा—जसे प्रयोग प्रचलित है। चेहरा आकृति' के आधार पर लाक्षणिक अथ समान भी किया जा सकता है।

अय उदाहरण—

1 नहीं म चद उनहारि।

—पृथ्वीराजरासो 9/97

2 अमियानद तणो उणहारि ।

—गीत आसाजी महडू

3 वरनिजेनि 'उनिहार' वह ।

—पृथ्वीराज रासो, 9/42

4 पृथ्वीराज 'उनिहार' हि ।

—वही, 9/43

5 सुंपिग पराग हरे 'उनिहार' ।

—वही, 13/104

6 भजपाजाप 'उणिहार' एह ।

—पीरदान ग्रथावळी, पृ 35

रूप भेद– उणियारो, उणिहारो

उळखउ

'उळखउ' शब्द 'बीसलदेव रासो' के माध्यम से चर्चा म आया है। यथा—

दिठि दिठि नवि उळखउ ।

—बीसलदेव रासो 143/5

प्रस्तुत 'रासो' के सम्पादक डा तारकनाथ अग्रवाल ने 'उळखउ' शब्द का हिन्दी अर्थ 'देख सकना' दिया है जो प्रसगानुकूल नही है।

'ओळखणो' राजस्थानी भाषा के साहित्य एव साधारण बोल चाल की भाषा म रात दिन व्यवहृत होने वाला क्रियापद है, जिसका हिन्दी अर्थ पहचानना' होता है।

अन्य उदाहरण—

रूपभेद—ओळखिउ, ओळखी, ओळख

ऊडळ

'ऊडळ' शब्द 'अचळदास खीची री वचनिका' के माध्यम स प्रकाश म आया है। यथा—

अवरि किणि अविय आभ कुण 'ऊडळ' आणइ ।
तवहि कुण उल्लघयइ, कवण जळ सख्या जाणइ ।।
—अचळदास खीची री वचनिका, पृ 65

प्रस्तुत 'ऊडळ' शब्द सभी प्रकाशित कृतियो मे अशुद्ध मुद्रित हुआ है। प्राचीन लिपि में लिखे गये 'ऊ' को आधुनिक प्रतिलिपिकर्ता अनजानवश 'कु' पढ लेते हैं। क्यों कि 'ऊ और कु' की लिखावट मे ज्यादा अतर नही है।

'ऊडळ शब्द का अथ होता है—'दोनो बाहुओ को मिला कर बनाया गोल घेरा या 'इस घेरे मे समा जाये इतनी वस्तु।' हिन्दी भाषा मे इसे हुआ इसे 'बाहुपाश शब्द से व्यक्त कर सकते हैं अत उपयुक्त उदाहरण के द्वितीय चरण का हिन्दी भावाथ होगा— आकाश को कौन बाहुपाश म ले सकता है अथवा भर सकता है।

परन्तु इस सीधे सादे अथ को कतिपय शहरी विद्वान मानने के लिए तैयार नहीं हैं। राजस्थानी भाषा के अन्वेषक श्री रावतजी सारस्वत ने अपने एक लेख (परिषद् पत्रिका वष 23 अक 3) मे इस शब्द पर किये गये मेरे बाहुपाश अथ को अस्वीकार करते हुए लिखा है— यहा ऊडळ' का अथ 'बाहुपाश किया गया है जो ठीक नही है। आकाश को बाहुपाश म भरने का कोई तरीका नही है। आकाश को टिकाये रखने (गिरने से बचाने) के लिए हथेलियो को ऊपर करने की आगिक क्रिया की आवश्यकता है। देशी नाम माला (1/129) में 'ऊटळ को देशी मान कर इसका अथ मच, मकान और उच्चासन किया गया है। पाइय सद्दमहाण्णवो (भा 190 174) म भी यही अथ है। हथेलियो को ऊपर करके बनाया गया यह' उच्चासन' ही 'ऊडळ' (ऊध्व मडल) होना चाहिए। इस अथ मे लकडी आदि के सहारे से किसी भारी वस्तु को टिकाये रखना भी ऊडळ की परिभाषा म आ सकता है। (पृ 162)

इसी प्रकार इस शब्द ऊडळ को लेकर राजस्थानी कोषकार श्री बदरीप्रसाद साकरिया ने (अपने एक पत्र में) लिखा है—आकाश सवत्र है। चिदाकाश है घटाकाश है। किन्तु वीरो के आकाश की कल्पना ऊपर की गई है। लोकमान्यता भी आकाश क ऊपर होने की ही है। यही क्यों—खुदा भी सातवें आसमान मे अपना डेरा लगा कर विराजे हुए हैं। आकाश सत्य के बल पर बिना थभे ठहरा हुआ है। इससे मालूम होता है कि वह वृहदाकार घन

पदाथ है। नही तो शून्य में ऐसी कल्पना क्यों की जाती। खैर, उनका विज्ञान उनके पास है, यह सच्चा है या काल्पनिक—यह भी वे ही जानें। हमें तो उनकी कही हुई बात को स्पष्ट मात्र करना है।

वीरों का आकाश गिरने लगता है तो वे अपनी भुजाओ का ऊची करके हथेलिया फलाकर उसे वही थाम लेते हैं। आकाश के बावत म वे इतनी हीन कल्पना तो शायद नहीं करते कि उसको 'बाहुपाश' म समाये जितना या 'गोद में समाये' जितना छोटा बना देते। (आधार डिंगली मुज अर्थरि 22/17)

उपयक्त दोनो विद्वान देशी नाममाला तथा पाइय सद्द महाण्णव के नाम-साम्य क चक्र म पड कर भ्रमित हो गये हैं। उन्हे 'आकाश का बाहुपाश में भरने' की कल्पना हीन भावना एव असगत प्रतीत होती है तथा गिरते हुए आकाश के नीचे ठेगा (सहारा) लगाने की सही। नाम-साम्य के आधार पर इस प्रकार की अनेक कपाल कल्पनाए प्रचलित की गई हैं। राजस्थानी भाषा के हिन्दी टीकाकर तो प्राय इस भ्रम मे भ्रमित पाये जाते हैं।

'ऊडळ' गावो मे घास के माप के लिए आज भी प्रचलित है। चार ऊडळ का एक मन (चालीस सेर) घास होता है जिसे भारा कहा जाता है। इस प्रकार के दस भारो से एक बलगाडो का बोझ होता है। गुजराती मे 'जोडनी कोश मे ऊडळ' का यही अथ दिया गया है। अब रही बात आकाश को बाहुपाश मे भरने की 'तुच्छ' अथवा 'हीन भावना' की। इसके सबध म मैं एक नकारात्मक उक्ति प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत कर रहा हू ताकि इस भ्रम का निराकरण हो सके।

मरीज नही आभ सू बाथ मोळ।

—नागदमण, प 70

अर्थात्— हे भोळे! आकाश से बाहुपाश नहीं भरना चाहिए।' इस उद्धरण म प्रयुक्त 'बाथ' एव 'ऊडळ' समानार्थी हैं। परन्तु इनमे थोडा-सा अतर भी है। 'बाथ' मे दोनों बाहुआ का घेरा छोटा या बडा किया जा सकता है, क्योंकि इसमें दानो हाथों की अगुलिया को परस्पर जोडे रखना आवश्यक नही है जब कि 'ऊडळ' में बाहुओ का घेरा अगुलियो को मिलाकर बनाया जाता है, ताकि उसके माप म अन्तर न आय।

अन्य उदाहरण—

1 समत्था इसा 'ऊडळा' आभ साहे।

—निडिया जग्गा वचनिका, प 180

2 डाबलोह् गटश्रीस, श्राम उपाड ऊडळ ।

—गजगुण रूपक बध, पृ 77

3 ग्रहे श्राम 'ऊडळा , रहे मीढिया वगत्तर ।

—राजरूपक, पृ 98

4 श्राभ समाहे 'उडळ', दीठ दळ करार ।

—वही, प 137

5 'बाष' घलां असमान सू लज हाथ बलतारे ।

—वीरमायण पृ 187

6 रुल छळ झल ऊठिया घल्ले बाथ निहग ।

—राजरूपक, प 72

ऊचाळउ

ऊचाळउ' शब्द ढोला मारू रा दूहा के माध्यम से चर्चा का विषय बना है । यथा—

1 पिंगळ 'ऊचाळउ कियउ नळ नरवर चइ देस ।

2 ऊचाळउ अवरसणउ कइ फाकउ कइ तिड्ड ।।

— ढोला मारू रा दूहा दो 2 तथा 60

सम्पादक त्रय (डा रामसिहजी पारीकजी व स्वामीजी) ने 'ऊचाळउ का अथ प्रयाण या कूच देश त्याग परदेश गमन (शब्दकोश पृ 567) किया है तथा टिप्पणी म—स उच्चलन प्रा उच्चालो (विशेष भी पृ 404)—बताया है । डा माताप्रसादजी गुप्त सपादक त्रय के अभिमत को अस्वीकार करते हुए लिखते हैं— उचाळ<ऊच्चाळ<उत+चालय है । अवधी क्रिया उचार=उखाडना । इसी का अय रूप है उत+चल का उच्चल या ऊचल होगा जिसका अवधी रूप उचर—उखडना है ऊचाल नहीं ।'

शब्दों का द्रविड प्राणायाम को श्री गुप्तजी से सीखे । सीधे सादे बोल चाल में प्रयुक्त शब्द को घुमा फिराकर 'उखाड फेंका है, जिसका प्रसग से कोई ताल मेल नहीं है ।

'ऊचाळो' है तो 'उत्+चालय' ही, परन्तु इसका राजस्थानी ■ प्रयोग अपना स्थान छोड़कर अन्य स्थान के लिए गमन' अर्थ के लिए होता है। हिन्दी में इस शब्द का पर्यायवाची नहीं है अतः व्याख्या से ही काम चलाना पड़ता है।

ऊजासडउ

ऊजासडउ 'शब्द ढोलामारू रा दूहा' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

पळमतइ 'ऊजासडउ', थ दूण केहड रग।
घण लीजइ, प्रीमारीजइ, छाडि विहाणउ सग।।

—ढोलामारू रा दूहा, 632

प्रस्तुत कृति के सम्पादक त्रय (ठा रामसिंहजी, पारीकजी व स्वामीजी) ने ऊजासडउ का हिन्द अर्थ 'उजाड जगह' दिया है, जो अयुक्त है। कदाच् सपादकों न उक्त पाठ का 'उजाडसउ' पढ लिया है। वस्तुत 'उजासडउ' शब्द का हिन्दी अर्थ 'प्रकाश' होता है। और उपयुक्त उद्धरण मे यह इसी अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। यथा– 'थल पर प्रकाश है'।

ओळग

'ओळग' शब्द 'अवलग्न (स) से उत्पन्न होता है, जिसका अर्थ होता है,—सेवा, चाकरी, खिदमत। यह शब्द राजस्थानी साहित्य, लोक साहित्य तथा साधारण बोल चाल की भाषा मे समान रूप से व्यवहृत होता है।

मध्यकाली राजपूत सभ्यता में 'चाकरी करने के लिए 'ईडर अथवा पूर्वी प्रदेशो की ओर जाना एक महत्त्वपूर्ण बात मानी जाती थी, अत इसको आधार बना कर लोक-साहित्य में अनेक लोकगीतो का सजन हुआ। जिनमे विरहनी नायिकाओ की मनोदशा का सटीक वर्णन हुआ है। 'हूमक चाकरडी

ढोला ! बडाई वीरन मेल, हमब चौमास ढोला घर रवोजी ।' जसे गीता स साहित्य भरा पडा है ।

'चाकरी' चाहे राजा की हो, चाहे ठाकुर की चाकरी, चाकरी ही है । नाइया को बुलाकर 'खिजमत' करवाते हैं, यह उनके द्वारा की गई सेवा ही है । इसी तरह ढाढी' अथवा 'ढोली' ओळगते हैं तो वे भी अपनी चाकरी ही बजाते हैं । इस प्रकार विभिन्न सेवा कार्यों के लिए 'अळग' शब्द व्यवहार मे लाया जाता है ।

अन्य उदाहरण—

1 आतम तुझ पासइ अणइ, 'ओळग रूडा रस ।

—ढोला मारू रा दूहा, 114

2 इन्द्रादि देव कर 'ओळग्ग ।

—हरिरस

3 आई ओरगि राजा के रहा ।

पद्मावत, 446/1

4 आवइ घरि 'उळग मिसइ ।

—माध वानळ काम कदळा, पृ 13

5 बारह बरस उळग रहाउ ।

—बीसळदेव रास, 120/11

रूप भेद–उळग, ऊळग, ओळग, ओलग्ग अउळग्ग ।

ओझडे

'ओझडे' शब्द वेलि श्री कृष्ण रुक्मिणीरी' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है । यथा—

चोटी आळू कूदइ चउसठि चाचरि,
धू पडियइ ऊससइ धड ।
अनत अनइ सिसुपाळ अउझडा'
झड मातउ मडियउ झड ।।

—वेलि, द्वाला 121

वेलि के टीकाकार श्री दीक्षितजी ने 'ओझड' का हिन्दी अर्थ 'निरंतर' दिया है, जो अयुक्त है।

'अउयडा' अथवा 'ओझड शब्द तलवार के प्रहार करने के तरीके से संबंधित है। हिन्दी में इसे 'तिरछा प्रहार' अथवा 'तिरछे' मिटने कहा जा सकता है।

यह 'ओझडा' शब्द 'वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी री' में भी आया है। इसके संपादक श्री शंभुसिंहजी मनोहर ने 'ओझडा' का अर्थ 'प्रहार' विशेषतः उलटे हाथ का अचूक वार किया है। उदा पवत मेर रो सीस खडग री 'ओझाड' देर भूननाथ रै उपायन कियो। (वंश भास्कर, पृ 1449), 2 तीं पछ ऊनाहाथरी 'ओमड' सू माहरराज सिपाहू वळी रो सीस उडायो। (वही, पृ 1353) श्री काशीराम शर्मा ने इसका अर्थ 'सीधावार' किया है, जबकि 'ओझडो' का अर्थ उलटे हाथ का वार होता है, जैसा कि उदाहरण संख्या 2 में स्पष्ट हो जाएगा। (वचनिका, पृ 128)

श्री काशीरामजी शर्मा ने श्री शंभुसिंहजी मनोहर के उक्त विवेचन से असहमति व्यक्त करते हुए लिखा है—' लिखने हैं—शर्मा ने 'साधावार' किया है जबकि 'ओझडा' का अर्थ उलटे हाथ का वार होता है, जसा कि उदाहरण स 2 से स्पष्ट है। उदाहरण है—'तो पछ ऊळा हाथ री ओझाड सू '। उदाहरण तो स्पष्टत मेरे ही अर्थ की पुष्टि करता है। 'ऊळा हाथ' से विशेषित करना पड़ा, यह इस बात का प्रमाण है कि 'ओझड' सामान्यत 'सीधावार ही होता है। 'सव्यसाची' तो कहना पड़ता है, जबकि 'दक्षिण साची' तो सामान्यत सभी होते हैं, अत उसे विशेषित करने की आवश्यकता ही नहा है'। (वचनिका सम्पादन, पृ 67 68)

'ओझडा' शस्त्र चलाने का एक विशेष तरीका है। इसके द्वारा 'तिरछा प्रहार करने का उल्लेख मिलता है। हिन्दी म तो इसे व्याख्यायित ही किया जा सकता है। इसका हूबहू पर्याय हिन्दी म नहीं मिलता है।

प्राचीन टीकाओं म भी 'ओझड'='शस्त्रमोक्ष विवादे सुबोध मंजरी 'हथियार मूकणरइ विवादइ' वनमाळी वल्लोवा व वो (अप्रकाशित) तथा 'हथियारा र मूकणरइ विखई' उल्लेख किया गया है। नवीन टीकाकारों ने इस शब्द का मनमाना अर्थ लिख दिया है चाहे वह प्रसंग से मेल खाता हो अथवा नहीं।

कदळ

कदळा शब्द 'पृथ्वीराज रासो' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

सोइटोडर 'कदळ' ही जुठयो।

—पृथ्वीराज रासो, 2/13

'रासो' के संपादक डा वी पी शर्मा ने 'कदळ' शब्द का हिन्दी अर्थ 'कंदमूल' एवं सामंत दिया है, जो अप्रासंगिक है।

'कदळ' राजस्थानी भाषा एवं लोक व्यवहार मे 'युद्ध, लड़ाई, झगड़ा' के अर्थ प्रयुक्त होता है।

अन्य उदाहरण—

1 'कदळ' दळ उठहि भिरन।

—पृथ्वीराज रासो, 14/93

2 *छछीहुन कलह सु 'कदळ' सज्यो।*

—वही, 16/68

3 काम अनी कदळ सेवीत्यो।

—वही, 16/46

4 को काम कदळ चढो।

—वही, 15/32

5 अहि कन्ह कुहू दिन 'कदळ' भो।

—वही, 17/44

6 'कदळ' सो जुट्टिय।

—वही, 18/72

7 अति 'कदळ' करता इळा।

—राजरूपक, पृ 539

कइर (कैर)

'कइर' शब्द 'ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम से प्रकाश में आया है।

यथा—

> करहा इण कुळिगामडइ, किहा स नागर वेलि ।
> करि 'कइरां' ही पारणउ, अइ दिन यूंही ठेलि ॥
>
> —ढोला मारू रा दूहा, 430

सीधे साधे कइर (कर) शब्द को एकर डा माताप्रसादजी गुप्त न बडी विचित्र बात कही है—'करीर मे ऐसी कोपलें होती ही नही है, जिन्हें ऊट चर सके। यह शब्द कदाच 7 स कदर जिस श्वेत खदिर कहा जाता है।' (ना प्र पत्रिका वष 65 अक 1) यदि डा गुप्तजी कभी राजस्थान आये होते तो उन्हें पता चल जाता कि करो को ऊट खाता है अथवा नही। सीधे साधे बहुप्रचलित शब्द को व्युत्पत्ति के चक्कर मे डाल कर ध्वनि-साम्य स अथ का अनथ कर दिया। श्वेतखदिर, जिसे खर' कहा जाता है, कर से भिन्न वृक्ष है। कर ऊटो का प्रिय भोजन है, परन्तु नागर वेल के पत्तो (पानो) से तो हीनस्तर का ही है, अत उक्त दोहे मे उसके स्तर का ही बात कही गई है।

अ य उदाहरण—

1 'कइरां' कूपळ न विचरू, सघण पडइ पचास ।

—ढोला मारू रा दूहा, 431

2 बीली, बोर, 'कइरा' इणोरा माधव मा फळ एह ।

—का हडदे प्रबध, पृ 71

3 ज्यू चित 'कइरा' कूमटा, ज्यू चित सागर फोग ।

—सबद ग्र थ (अप्रकाशित)

4 आक सरीखा आक गिणि, जाळि 'करीरा' झाडि ।

—ढोला मारू रा दूहा, 432

5 कद मूळ फळ 'कर' पाव रांण प्रतापसी ।

—दुरसा आढा

कपूर

'कपूर' शब्द 'जिण दत्त चरित' के माध्यम स प्रकाश म आया है।

यथा—

फूल तबोल कपूर, अइसो भोग करावइ घृत।

—जिणदत्त चरित, पृ 413

प्रस्तुत काव्य के सम्पादक-द्वय—श्रीमाताप्रसादजी गुप्त श्री कस्तूरचद कासलीवाल ने 'कपूर' का हिन्दी अथ कपूर किया है जो समीचीन नही है।

यह 'कपूर' शब्द 'वचनिका राठौड़ रतनसिंह जी महेदासौतरी' में भी आया है— तिणिवेळा कपूर बीड़ा भाइयाँ उव रावाँ कवीसुराँ कू दिया।— (वचनिका, पृ 112) इसके सम्पादक श्री काशीराम शर्मा ने 'कपूर' का अथ कपूर युक्त पान किया है। इसका शब्दाथ करते समय सस्कृत वाला 'कपूर' सम्पादक के ध्यान म रहा है। इसी प्रकार ध्वनि साम्य के आधार पर एक 'कपूर' ही नही अनेक राजस्थानी शब्दो को अथ करते समय भ्रम जाळ उपस्थित किया गया है। वस्तुत 'कपूर' पान की एक जाति होती है। कदाच यह अन्य पानो की अपेक्षा स्वाद म भिन्न रहा होगा, अत राज-दरबार मे इसी 'कपूरीपान' का प्रचलन रहा है।

श्री काशीरामजी शर्मा को उपयुक्त अथ पसन्द नहीं आया। उन्होने लिखा है ' मैं इसके बारे मे कोई प्रतिवाद (श्री शभुसिंह मनोहर द्वारा किये गये अथ का) नही कर सकता। न मैं पान खाता हू न बेचता हू। न कविता करता हू क्योंकि राजशेखर ने कहा था कवि को पान अवश्य खाना चाहिए और श्री हर्ष ने बताया था कि उसे कान्यकुब्जेश्वर रोज दो पान देता है— ताम्बूल द्वयमासन चलभतेय कान्यकुब्जेश्वरात्। मैंने तो साहित्य म पान कपूर पद का प्रयोग देखा है और वैसा ही लिख देता हू। समझता यह था कि जैसे अब पीपरमेट डालते हैं, वैसे कपूर डाल देते होंगे ठड के लिए। (वचनिका का सम्पादन पृ 65)

पान मे कपूर डालने का प्रचलन रहा है अथवा नही, इसके सबध मे खोज होनी चाहिए। उपयुक्त कपूर शब्द तो पान की जाति के लिए ही प्रयुक्त हुआ है।

अन्य उदाहरण—

1 अरोघ अघाय किया आचमन्न
कपूरी ग्रहै पान बीड़ा प्रसन्न॥

—नागदमण पृ 56

2 फूल तबोल कपूर बहुत ऐसो भोग करावइ घृत।

—जिणदत्त चरित पृ 413

3 भोजन कूर 'कपूर' तुम जीमता हो राजा ।

—नाथसिद्धों की बानियां, पृ 20

करल

'करल' शब्द 'ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम से चर्चा में आया है। यथा—

तीखा लोयण कटि 'करल , उर रत्तडा बिवीह ।

—ढोला मारू रा दूहा, 459

श्री माताप्रसाद जी गुप्त ने 'करल' शब्द को द्रविड प्राणायाम कराते हुए लिखा है—' करल < प्रा करलि < स कदली=एक जातिका हरिण'। (ना प्र प, वर्ष 65, अक 1) परन्तु यह अर्थ क्लिष्ट कल्पना के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यदि सस्कृत से व्युत्पन्न करना आवश्यक हो तो 'कर =हाथ में+ल=समा जाये' अर्थात् मुष्टि-ग्राह्य।

अन्य उदाहरण—

1 स्यामा कटि मेखला समरपित

त्रिसा अग मापित 'करल' ।

—वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री, द्वाला 96

' वर्ळि किसी छइ त्रिसा अग। अगइ अययवइ क्रिस पातली छइ। तिण होज कारणि मापित करल मूठीयइ ग्राह्य छइ' ।

—नारायणवल्ली बा व (अप्रकाशित)

कहर

कहर' शब्द महादेव पारवती री वेलि के माध्यम से प्रकाश मे आया है। यथा—

एक 'कहर' लाविया हाथ ।

—महादेव पारवती री वेलि, 214

'वेलि' के सम्पादक श्रीरावतजी सारस्वत ने 'कहर' का हिन्दी अर्थ 'वज्रपात' दिया है, परन्तु इसका वास्तविक अर्थ विपत्ति अथवा 'भय' होता है।

अन्य उदाहरण—

1 तिण 'कहर' सुरापति सद करइ।

—महादेव पारवती री वेलि 255

2 'कहर' भराम ताइ मदन कियइ।

—वही 260

3 पडत मत वडडे 'कहर'।

—पृथ्वीराज रासो, 46

कहिरी

कहिरी शब्द 'महादेव पारवती री वेलि' के माध्यम से प्रकाश मे आया है। यथा—

करडी निजर जोवतो कहिरी'।

—महादेव पारवती री वेलि 260

वेलि के सम्पादक श्री रावतजी सारस्वत ने 'कहिरी' शब्द का हिन्दी अर्थ 'क्रोधी' किया है जो असगत है। वस्तुत कहिरी का अर्थ 'तिरछी' या 'टेढी' होता है तथा इसी अर्थ में उपर्युक्त उद्धरण मे प्रयुक्त हुआ है।

कूर

'कूर' शब्द 'नाथ सिद्धो की बानिया' के माध्यम से प्रकाश मे आया है। यथा—

कूर कपूर तुम्हे जीवता हो राजा।

—नाथ सिद्धो की बानियाँ पृ 20

'नाथ सिद्धों की बानियाँ' के सम्पादक प श्री हजारीप्रसादजी द्विवेदी ने 'कूर' का हिन्दी अर्थ 'क्रूर' दिया है, जो प्रसगानुकूल नही है। सम्पादक

महोदय की दृष्टि संस्कृत के 'क्रूर' शब्द पर रही है, पर उन्होने भोजन के विषय मे जरा भी ध्यान नही दिया। क्योंकि 'क्रूर' कोई खाने की वस्तु नही है। वस्तुत यह 'कूर' शब्द एक प्रकार की मिठाई से सबधित है। गेहू अथवा बाजरी का आटा घी म सेंक कर उसमे शक्कर मिला देने से यह 'कूर बनती है। वतमान मे भी यह गावों म बनायी जाती है और यहा की प्रसिद्ध देवियाँ 'बायाजी' के भोग लगाते हैं।

अन्य उदाहरण—

1 सतिभामा के घरि गयउ, 'कूर' न पायो भूखउ भयउ।

—प्रद्युम्न चरित, पृ 402

2 भोजनि 'कूरू' करबुलउ आबुलउ रिद्दु लहेस।

—वसत विलास, 46

केवा

'केवा' शब्द 'वेलि महादेव पारवती री' के माध्यम से प्रकाश म आया है। यथा—

'केवा' मागण वडउ करूर।

—महादेव पारवती री वेलि, 209

'केवा' शब्द का हिन्दी अथ 'वर, प्रतिशोध, बदला' होता है। कदाच इसी शब्द के आधार पर 'केवी'— शत्रु' शब्द बना है। वतमान कालिक बोल चाल की भाषा में भी केवा इसी 'वर' के अथ मे प्रयोग मे लाया जाता है।

अन्य उदाहरण—

1 काळीनागरा वान्ह समाळ केवा।

—नागदमण, 13

2 वाकोदरा माथ समाधीम काढवा केवा।

—प्रा रा गी, भा 1, पृ 209

3 पातसाहा ताइ केवा' बहोड थापरा पाणी।

—हस्तलिखि गीत

4 नवीलो नवा पुराण केवा क्यो न बीसमे कुळमीड।

—प्रा रा गी भा 2, पृ 66

केवी

'केवी' शब्द 'वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री' के माध्यम से चर्चा का विषय बना। यथा—

कामणि कहइ काम, काळ कहइ 'केवी',
नारायण कहइ अवर नर।
वेदारथ इम कहइ वेदवित,
योग तत्व जोगेसवर॥

—वेलि, दाला, 76

वेलि के नवीन सम्पादक श्री दीक्षितजी ने 'केवी' का अर्थ 'कोई अन्य केऽपि' किया है, जो समीचीन नहीं है। सम्पादक द्वय तथा श्री दीक्षितजी ने इस शब्द को केऽपि के ध्वनिसाम्य के आधार पर इसका अर्थ प्रकल्पित किया गया प्रतीत होता है। इस शब्द का व्यवहार राजस्थानी भाषा के काव्यों में बहुतायत से हुआ है। 'केवी' का वास्तविक अर्थ 'शत्रु दुजन' होता है।

अन्य उदाहरण—

1 कमण करे जुध तुसा केवी'।

—पीरदान ग्रन्थावली पृ 19

2 'केवी दुजन' देखो महई ए काळ।

—नारायण वल्ली, टीका (अप्रकाशित)

कोड

कोड शब्द 'रास और रास वयी काव्य' के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

कपिय किन्नर 'कोडि' पडिय हुरमण हडहडिया।

—रास ओर रासा वयी काव्य, 129

'कोडि' शब्द का सम्पादक द्वय (श्री दशरथजी शर्मा व श्री दशरथजी ओझा ने 'गोद में' अर्थ किया है, जो असंगत है। सम्पादक द्वय का ध्यान स में 'क्रोड' शब्द की ओर चला गया प्रतीत होता है। इस प्रकार अन्य स्थलों पर भी ध्वनि साम्य के परिणाम स्वरूप अनेक अनर्थों की सृष्टि हुई है।

'कोड' राजस्थानी-साहित्य एवं बोलचाल की भाषा में समान रूप से व्यवहार में आता है। इसका हिन्दी अर्थ 'प्रसन्नता, उत्साह, चाह' किया जाता है।

अन्य उदाहरण—

1 मनह सकोडी मानवी, सोहई तुझ्झ सरीर।

—ढोला मारू रा दूहा, 232

2 सासूजी म्हारा पीवर आवण रो 'कोड'।

—एक प्रसिद्ध लोक गीत।

कोपर

'कोपर' शब्द 'वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी महेसदासोतरी' के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

अरउव्वड़तिज्जड़ पाग अमघ।
कट कर 'कोपर' कालिज कघ॥51/14

—वचनिका पृ 344

'कोपर' शब्द पर हिन्दी-व्याख्या प्रस्तुत करते हुए वचनिका के सम्पादक श्री शम्भुसिंहजी मनोहर ने लिखा है 'कोपर (सं कर्पूर)=कोहनी, श्री काशीराम शर्मा ने इसका अर्थ 'खोपड़ी' किया है, जो निराधार है।'

श्री मनोहर के उपर्युक्त अर्थ को अस्वीकार करते हुए श्री काशीरामजी शर्मा ने लिखा है—मेरा आधार यह है कि नारियल और खोपड़ी दोनों का वाचक मलयालम का 'कोपरं' शब्द नारियल के साथ हजारों वर्ष पूर्व उत्तर भारत में भी आ गया। कवियों ने इसका प्रयोग भी कर लिया। पर शम्भुसिंह जी को विश्वास ही नहीं होता कि कोई वीर ऐसा हो सकता है जो दूसरे के सिर पर वार करने का साहस करे। इसलिए उन्होंने केवल हाथ, कुहनी, कंधे और कलेजे के कटने की बात स्वीकार की। यदि कवि 'कोपर' की जगह सिर लिख देता तो उसे अवश्य मान लेते जैसा—ढाता' सिर धाराढ़' में माना, अन्य और स्थलों पर भी माना। पर वे यह नहीं मान सकते कि कोई वीर किसी और के सिर पर प्रहार करने का साहस जुटा पायेगा। मुझे तो विश्वास

है, वीरो पर, अत मैंने 'खोपडी कटवादी।' (वचनिका का सम्पादन, पृ 91 92)

यद्यपि श्री काशीरामजी शर्मा ने 'कोपर' का खोपडी' अर्थ ठीक किया था, परन्तु सस्कृत से व्युत्पन्न करने के चक्कर मे श्री शभुसिहजी ने निराधार बता दिया। राजस्थान म नारियल से सम्बन्धित शब्द 'खोपरा बहुत प्रचलित है। राजस्थानी कवियो ने इस शब्द का प्रयोग 'खोपडी अर्थ मे ही किया है।

अन्य उदाहरण—

1 कसवइ ताइ 'कोपट कपरीता ढोहइ।

—महादेव पार्वती री वेलि, 212

2 रणहाट 'कोपट' निपट खळ।

—पाबू धाधल रो छद 47

3 झटक्क 'कोपटा'।

—गोगजी रा रसावळा, 23

4 कर घाय 'कोपरा उड खोपरा अद्धकर।

—रघुवर जसप्रकास भा 3 पृ 255

5 फुटक्क 'कोपर कध कपाळ।

—राजगुण रूपक बध पृ 135

6 घटि 'कोपर कध बगत्तर, असि अत असवार।

—वि है रासो, पृ 86

रूपभेद—कोपट, कोपटा खोपट

कोरड

कोरड शब्द गोरखबानी के माध्यम से चर्चा म आया है। यथा—

हड ब्रह्मड चहोडिया मानू वेस्या अन।

कोई कोई 'कोरड रह गया, यू भाख नाथरतन॥

—गोरखबानी स 211

प्रस्तुत 'वानी' के सम्पादक डा पीताम्बरदत्तजी बडथ्वाल ने 'कोरड' का हिन्दी भावार्थ 'कोरा' किया है जिससे वक्ता का तात्पर्य सिद्ध नहीं होता है। वैसे डा बडथ्वालजी ने उक्त पूरी 'सबदी' का विचित्र अर्थ किया है— 'रतननाथ कहता है कि मैं मानता हू कि समस्त ब्रह्माड वेश्या (माया) के अन्न पर पलता है। इसलिए वह उसके शासन (चहोडिया) मे है। कोई बिरला ही उससे कोरा है। गढवाली बोली में चहोडना का अर्थ चित पट और अगल बगल चारों तरफ से पीटना है।'

शब्दो के वास्तविक अर्थ का ज्ञान न होने पर इस प्रकार का अर्थ करना कोई आश्चर्यजनक नही है। राजस्थानी भाषा के काव्य तो इस प्रकार के अल्लूल जलूल अनर्थों से भरे पडे हैं। नहीं तो उक्त सबदी म कहीं पर भी दुरुहता नहीं है। यथा—

'रतननाथजी कहते हैं—मानो माया रूपी वेश्या ने ब्रह्माड रूपी हाडी में जीव रूपी अन्न (सिद्ध करने हेतु) चढा दिया। उसमे से कोई कोई जीव कोरड (असिद्ध) रह गये अर्थात् माया के मनोनुकूल सिद्ध नही हुए।'

उबालने पर भी जब अनाज का कोई दाना गलता नही है तो उसे 'कोरड' कहते हैं। कोरड=असिद्ध (बिना सीजा)।

सेडा

'सेडा' शब्द 'राजस्थानी नीति दूहा' के माध्यम से प्रकाश मे आया है। यथा—

सेडे सेडे ठीकरी, निकमी मति निहार।

—राजस्थानी नीति दूहा, 92

प्रस्तुत कृति के सम्पादक श्री मोहनलालजी पुरोहित ने 'सेडे सेडे' शब्द का अर्थ 'घूरे घूरे पर' किया है जो भ्रात है।

सेडा राजस्थानी का बहु प्रचलित शब्द है और इसका अर्थ 'गाव' होता है।

अन्य उदाहरण—

1 ऊजड 'सेडा' फिर बसै, निरधनिया धन होय।

—प्रसिद्ध लोकोक्ति

गजांवाग (गजवाग)

गजवाग' शब्द 'वचनिका राठोड रतनसिघजी महेसदासोत री के माध्यम से चर्चा का विषय बना ह। यथा—

पर्बे वगपती, अगदत फौज्ज।
गजांवाग वाजे गिव सीस गज्ज ॥58/12
—वचनिका पृ 155

वचनिका के सम्पादक श्री शमुसिहजी मनोहर ने लिखा है—'गजांवाग =गजवागें, अकुश विशेष जो सूय के प्रकाश में चकाचौंध उत्पन्न करते ऐसे प्रतीत होते थे जसे विजलियां चमक रही हो। यहां पर डा टसीटरी व सपादकद्वय (डॉ रघुवीरसिहजी व श्री काशीरामजी शर्मा) क्रमश 'गजा वाजि एव 'वाज' पाठ माना है। प कृपाशकरजी की प्रति मे भी यही पाठ है। परन्तु दो प्रतियो (डा टसीटरी द्वारा निर्देशित FP) में 'गजावाग पाठ है, जो हमे शुद्ध प्रतीत होता है। श्री रावत सारस्वत की प्रति म भी गजावाग पाठ है। फलत हमने डा टैसीटरी द्वारा निर्देशित FP प्रति तथा श्री रावत जी की प्रति मे उपलब्ध उक्त पाठातर को ही स्वीकार किया है। तथा 49/6 मे प्रयुक्त 'गजराजा राजान के गजवाग के विषय म श्री शमुसिहजी मनोहर ने लिखा है— गजवाग=अकुश विशेष जो हाथी को चलाने या उसे नियन्त्रित रखने के काम म लाया जाता है। इसका अग्रभाग नुकीला होता है एव छोर के समीप एक मुडा हुआ अर्द्धचद्राकार काटा उससे जुडा होता है जिसे हाथी के कान मे डालकर खीचने पर या तो हाथी चलने लगता है या महावत की इच्छानुसार सयत हो जाता है। इसे आजकल की शब्दावली में अकडी कहते हैं। श्री काशीराम शर्मा ने कदाचित वाग' का सबध सस्कृत वल्गा से जोडते हुए इसका अर्थ हाथी का मुह बाधने वाला' कर दिया है जो निराधार है। 'आईने अकबरी के अनुसार स्वय बादशाह अकबर ने यह नामकरण किया था। आईन 45 म हाथी का सामान शीषक के अतगत अबुलफजल लिखता है—

27 अकुश—लोहे का एक छोटा छड है। सम्राट ने इसका नाम गज बार रखा है। इससे हाथी को अधिकार म रखते हैं और जहा चाह खडा कर देते हैं। (आईने अकबरी, पृ 122)

श्री शमुसिहजी मनोहर के द्वारा की गई 'गजवाग की व्याख्या से श्री काशीरामजी शर्मा सहमत नही हैं। वे लिखते हैं जी हा हमने वल्गा या

लगाम से (गजवाग का अथ) जोडा है। हम लोग भी अपनी 'जबान पर लगाम' लगाना सीख जाए तो पाठकों का भला हो। घोडे की लगाम, ऊँट की नकेल (मोहरी), हाथी के अकुश, या गजबाग सभी का एक ही उद्देश्य है, पशु को नियत्रण मे रखना। प्रस्तुत (49/9) प्रसग मे राजाओ रूपी गजराजो को वश मे करने वाले रतन का वणन है अत बण्य न तो अकुश है और न वल्गा। धण्य है वश मे करने की क्षमता। व्यथ की चमचमाहट क्यो। पर 'अकुश' अथ ठीक नहीं। प्रमाण है शम्भुसिहजी का ही उदाहरण—गजवागा खेंचे छ—लगता है कोई रस्सा है। (वचनिका का सम्पादन, पृ 64)

श्री काशीरामजी का अन्दाज 'वल्गा ठीक' है पर वह कोई रस्सा नहीं है, है तो लोहे वाला अकुश ही। श्री शम्भुसिहजी मनोहर ने अकुश' को कान में डालकर खीचने का लिखा है, यह भी अनुमानाश्रित ही है। 'अकुश का प्रयोग मे लान के लिये हाथी के कान के पीछे एक गड्ढा (सत) होता है, उसी मे अकुश लगाया जाता है। इसका मुडा हुआ भाग भी इसी गड्ढे म डालकर खीचा जाता है। इतने बडे डील डोल वाला पशु अकुश के प्रयोग से थर्राने चिंघाडने लगता है और छोटे से आदमी के वशवर्ती हो जाता है।

अय उदाहरण—

1 गजवाग मरथ मैंगळा, वळकत्त वीजक वदल्ला।

—गजगुण रूपकबंध, पृ 72

2 पीलवाण कूमायळा माथ पगोरा अगूठा चलाय छै। गजवागा खेंचे छ। घत्ता घत्ता करे छ।

—रा सा सग्रह, भा 1 पृ 41

गोरू

गोरू शब्द 'महादेव पारवती री वलि के माध्यम से प्रकाश म आया है। यथा—

'गोरू' हुवइ मुख घास ग्रहइ।

—महादेव पारवती री वेलि, 380

वेलि के सम्पादक श्री रावतजी सारस्वत ने 'गोरू' शब्द का हिन्दी अथ कायर किया है, जो सही नहीं है।

'गोरू' शब्द का अथ 'गाय' होता है। उपयुक्त उद्धरण म यह श"द 'गाय' के अथ मे ही प्रयुक्त हुआ है। 'बगाल प्रदेश म यह शब्द 'गोर', गाय के अथ मे "यवहृत होता है।

चवणो

'चवणो' क्रि प का प्रयोग पृथ्वीराज रासो के माध्यम से प्रकाश मे आया है। यथा—

1 द्विजवर चवहि' आसिष वेद।

—पृथ्वीराज रासो, 2/61

2 'चवत

—पृथ्वीराज रासो,

रासो के सम्पादक डा वी पी शर्मा ने 'चवत' का हि"दी अथ 'चब चबाते' है दिया है, जो समीचीन नही है। यह राजस्थानी साहित्य मे बहु प्रयुक्त क्रियापद है, जिसका हि दी अथ कहना लिया जाता है।

अ"य उदाहरण—

1 गह गह राज चव सब सूर।

—पृथ्वीराज रासो 11/7

2 'चवा' बाळ देस किसु काळ छेह।

—नागदमण, 41

3 श्री चद्रमा ऊगो 'चव ।

—पीरदान ग्रथावळी, पृ 11

चाचर

'चाचर श"द महादेव पारवती री वेलि के द्वारा प्रकाश म आया है। यथा—

चद्र प्रहास सलता 'चाचर'।

—महादेव पारवती री वेलि, 193

'वेलि' के सम्पादक श्री रावतजी सारस्वत ने 'चाचर' शब्द का हिन्दी अर्थ 'सिर' दिया है। कदाच् सम्पादकजी का ध्यान 'चाचरो' शब्द की ओर चला गया दृष्टिगोचर होता है। 'चाचरो' का अर्थ 'कपाल' होता है, परन्तु उपर्युक्त उद्धरण में प्रयुक्त 'चाचर' इस शब्द से भिन्न है। 'चाचर' का वास्तविक अर्थ 'युद्ध' होता है तथा साथ ही यह एक प्रकार का नृत्य गीत भी होता है। उपर्युक्त उद्धरण में यह 'युद्ध' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

अन्य उदाहरण—

1 चोटियाळी कूदइ चौसठि 'चाचरि'।

—वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री, 121

2 'चाचरि' गून समइ कुण चोट।

—महादेव पार्वती री वेलि, 258

चाड

'चाड' शब्द 'राजस्थानी नीति दूहा' के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

जो पर चाडा' आगला, मीत करीजै ताह।

—राजस्थानी नीति दूहा, 39

प्रस्तुत दोहा में संपादक श्री मोहनलालजी पुरोहित ने 'परचाडा' का अर्थ 'दूसरों पर आक्रमण' किया है, जो भ्रांत है।

चाड' अथवा चड्ड का अर्थ 'सहायता' होता है अत 'परचाडा' का अर्थ होगा 'दूसरों की सहायता के लिए'। उक्त उद्धरण में यही अर्थ अभिप्रेत है।

अन्य उदाहरण—

1 महामदध असुरा, सुरह 'चाड' मारणा।

—रघुवरजस प्रकास, पृ 262

2 सोमनाथनी 'चाड' करजे।

—कान्हड़दे प्रबंध, 27

3 श्रीमाळी नइ 'चाडइ' मूवा।

—वही, 125

विशेष—'चाड' व चडड का दूसरा अर्थ 'इच्छा' भी होता है।

चास

'चास' शब्द राजस्थानी साहित्य एव व्यवहार की भाषा मे समान रूप से बोला जाता है। परन्तु इस शब्द के कम मात्रा में प्रयोग होने से इसके मूल अर्थ को लोग भूल से गये हैं तथा साथ ही इसके अर्थ में विस्तार भी हुआ है। उदाहरणार्थ 'रणमल्ल छद' के इस पद्यांश को लिया जा सकता है—

वरिवडवानळ झाळ समद
तुमेछ न आपू चास किमिइ।

—रणमल्ल छद पृ 28

प्रस्तुत छद की सम्पादिका श्री सरिता गहलोत ने उक्त पद्यांश का हिंदी अर्थ इस प्रकार किया है— भले ही सागर की अग्नि (बडवानल) शान्त हो जावे (पर मैं रणमल्ल) तुम यवन (म्लेछ) को हल से विदारित भूमि रेखा (चास) जितनी भूमि भी किसी प्रकार से नही दूगा।'

उपर्युक्त हिंदी भावार्थ देखने पर प्रतीत होता है कि— चास हल की नोक से चिरे जितनी भूमि को कहते हैं। पता नहीं सपादिका ने यह अर्थ किस आधार पर किया। चास' शब्द भूमि' के पर्यायवाची के रूप मे 'डिंगळ कोष म आया है अत इसमे सशय की कोई गुजाइश ही नहीं है। असमिया भाषा मे 'चासा कृषक को कहते हैं अत चास, कृषि योग्य भूमि हुई'। राजस्थानी बोल चाल म—आवो उणरी चास वास देख आवा। यहा पर भी चास का तात्पय कृषि योग्य भूमि' एव 'वास का तात्पय 'घर' से है। वस वतमान मे इस शब्द युग्म का व्यवहार हाल चाल अथवा सुख शाति के रूप मे भी किया जाता है जो इस शब्द का अथ विस्तार है।

चूप

'चूप' शब्द 'राजस्थानी नीति दूहा के माध्यम से चर्चा म आया है। यथा—

सब कुछ प्यारो है उद, अपनी अपनी चूप'

—राजस्थानी नीति दूहा, 109

प्रस्तुत दोहो के सम्पादक श्री मोहनलालजी पुरोहित ने 'चूप' शब्द का हिन्दी अर्थ 'रुचि, प्रेम' दिया है, जो केवल अनुमानाश्रित है। 'चूप' का हिन्दी अर्थ 'चतुराई', 'सज्ज धज्ज' होता है तथा उपर्युक्त उद्धरण मे यह 'चतुराई' अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है।

चोज

'चोज शब्द' 'महादेव पारवती री वेलि' के माध्यम से चर्चा मे आया है। यथा—

दीवाण तणउ चोज देखता।

—महादेव पारवती री वेलि, 120

वेलि के सम्पादक श्री रावतजी सारस्वत ने 'चोज' का हिन्दी अर्थ 'प्रताप' दिया है, जो प्रसगानुकूल नही है।

'चोज' शब्द का हिन्दी अर्थ 'शोभा', 'उदारता' होता है। उपर्युक्त उद्धरण में यह शब्द 'शोभा' अर्थ म प्रयुक्त हुआ है।

अन्य उदाहरण—

1 मुगलन जाण मोदया चुगल न जाण 'चोज'।

—राजस्थानी नीति दूहा, 799

छछाळ

'छछाळ' शब्द 'ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम से चर्चा का विषय बना। यथा—

घम्म घम्मतइ घूघरइ पग सोनै री पाळ।
मारू चाली मन्दिरे, जाण छूटो 'छछाळ'॥

—ढोल मारू रा दूहा 539

'छछाळ' शब्द का सम्पादक त्रय (ठा रामसिहजी श्री सूर्यकरणजी पारीक व स्वामीजी) ने हिन्दी अर्थ लिखते हुए लिखा है— छछाळ' > अप छिछोळ =छोटी धारा [दे ना मा 3 27] अर्थात् 'मानो फवारा छूटा हो।

बताया है, परन्तु इस अर्थ की शब्दों के साथ कोई संगति नहीं है। 'छछाळ' हाथी के पर्यायवाची शब्दों में डिंगळ कोष में भी आया है।

अन्य उदाहरण—

1 अनळ पख धार 'छछाळ आखां।

—डिंगळ कोष पृ 77 हाथी नाम

2 प्रसै काळ 'छछाळ' छूटा पटाळ
त्रमे हारणा कारणा भूतकाळ।

खिडिया जग्गा वचनिका, पृ 40

3 दिया जस औरंगहुवा, छोडो गय 'छछाळ।

—वही 38

छछोहा

'छछोहा शब्द 'महादेव पार्वती री वेलि' के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

छोड सह आविया 'छछोहा'।

महादेव पार्वती री वेलि 81

वेलि के सम्पादक श्री रावतजी सारस्वत ने इस शब्द का अर्थ क्रोधित होकर' किया है जो प्रसंगानुकूल नहीं है। कदाच उन्होंने इसे 'सक्षोभ से व्युत्पन्न मान लिया है परन्तु यह देशज शब्द है और इसका सही अर्थ होता है—'त्वरा के साथ अथवा शीघ्र'।

अन्य उदाहरण—

1 छीणे जाणि 'छछोहा छूटा।

वलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री, 81

2 सोगण हुरे 'छछोहि' अमोलिक घर आपणउ।

—अचलदास खीची री वचनिका, प 42

3 धरा छछोहा भरण धरइ।

—महादेव पार्वती री वेलि, 263

छरा

'छरा' 'वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी माहेसदासौत री' के माध्यम से चर्चा का विषय बना। यथा—

छल साहितण ग्रहि खाग 'छरा'।
घस चढ़िलोघ वलवक धरा॥ 5/3

—वचनिका, पृ 16

वचनिका के संपादक श्री शम्भुसिंहजी मनोहर ने 'छरा' शब्द का हिन्दी अर्थ 'हाथ' देते हुए लिखा है ' श्री काशीराम शर्मा ने इसका अर्थ 'तलवार' किया है जो प्रसगानुसार अयुक्त है, क्योंकि तलवार का वाचक शब्द यहां 'खाग' (खड्ग) आ गया है। अतः छरा का अर्थ हाथ' किया जाना चाहिए। प्रस्तावित अर्थ में इसके प्रयोग के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

1 'छरा' झगा ऊनग, लग्ग गणग ममाड।

—रघुनाथ रूपक गीतांरो, पृ 141

2 पचानन पळमच्छ, पटके 'छरा' प्रतापसी।

—महाराणा यशप्रकाश, पृ 113

3 हितवा सघीटिया अलग न होव
छाय साग ऊपरि 'छर छात।

—गीत पचायण सागावत चहुवाण रो

उपर्युक्त 'छरा' की व्याख्या को अस्वीकार करते हुए श्री शम्भूसिंहजी मनोहर ने लिखा है श्री काशीराम शर्मा ने इसका अर्थ 'तलवार' किया है, जो प्रसगानुसार अयुक्त है क्योंकि तलवार' का वाचक शब्द यहां 'खाग' (खड्ग) आ गया है। पर वे स्वय पृ 17 पर कहते हैं 'छरा' का अर्थ तलवार भी होता है। अर्थात् वे चाहें तो कर सकते हैं, मैं नहीं। हमने तो छरा' को 'छुरा' का ही रूप माना था। और हमने छुरी कटारी, खड्ग खांडा, शर-बाण, गदा मुग्दर जैसे प्रयोग बहुत देखे हैं पर शम्भुसिंहजी की विशेषता यह है कि हम 'काला स्याह' कह दें या लाल सुर्ख' कह दें तो हमें भूल बता देंगे पर स्वय एक ही अर्थ में एक ही चरण में तीन शब्दों का प्रयोग भी अनुचित नहीं मानते।'

—वचनिका सम्पादन, पृ 46

परन्तु शब्द अनेकार्थी होता है। उसके अर्थ का निर्णय प्रसंग देखकर ही किया जाता है। उपर्युक्त उद्धरण में 'छरा' शब्द का अर्थ 'हाथ' लेना ही प्रसंगानुसार समीचीन रहेगा। क्योंकि 'तलवार खड्ग में यह हाथ' तात्पर्य प्रकट करने में अधिक सहायक है।

जान

जान शब्द वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

> राजा न 'जान' मगि हूताज राजा
> कहइ सु दीघ ललाट कर।
> हूरा नयर कि कोरण दीसइ
> धवळागिर किना धवळहर॥
>
> —वेलि द्वा 41

वेलि के टीकाकार श्री दीक्षित जी ने जान शब्द का हिन्दी अर्थ 'यान, सवारी' किया है जो अयुक्त है। साहित्य के अतिरिक्त यह शब्द साधारण बोलचाल की भाषा में भी व्यवहृत होता है जिसका हिन्दी अर्थ 'बरात' लिया जाता है।

वेलि की संस्कृत टीका सुबोध मञ्जरी के उल्लेख 'जानीति परिणयन समये स्वजन संबंधी बंधुवर्ग समुदाय' से भी उपर्युक्त 'बरात' अर्थ की पुष्टि होती है।

प्रस्तुत जान शब्द के मूल में तो कदाच 'यान' शब्द ही रहा है। जब विवाह के अवसर पर बेटे वाले अपने पारिवारिक जनों को विभिन्न प्रकार के यानों पर बठाकर बेटी वाले के यहां जाते थे तो 'यान जाते हैं' संबोधन से संबोधित किया गया होगा। बाद में 'यान' शब्द का अर्थविस्तार होकर >जान=बरात शब्द रूढ़ हो गया प्रतीत होता है। इसी शब्द के आधार पर वरपक्ष वाले व्यक्ति जानी बराती कहलाने लगे।

अन्य उदाहरण—

1 मंडळीय मिळिया जान हयहीस मंगळगान।

—रास और रासान्वयी काव्य

आगळियार वधाऊ आया आई 'जान हुव उछाह ।
—महादेव पारवती री वलि, 1222

जाइ

'जाइ शब्द 'राजस्थानी नीति दूहा' के माध्यम से प्रकाश म आया है । यथा—

पीपळ रोई फल विण फळ विण रोई 'जाइ' ।
—राजस्थानी नीति दूहा, 687

प्रस्तुत कृति के सम्पादक श्री मोहनलालजी पुरोहित न 'जाइ का हिन्दी अथ 'माता मा किया है, जो प्रसगानुकूल नहीं है ।

'जाइ एक प्रकार का पुष्प होता है जिसके फल नही लगते । उपयुक्त उद्धरण म आये पीपळ' एव जाइ दोनो शब्द वनस्पति वाची है ।

अन्य उदाहरण—
1 चदन अगर जाइ ना फूल ।
—कान्हडदे प्रबध 226

जूजुवौ

'जूजुवौ शब्द 'वचनिका राठौड रतनसिघजी महेसदासोत री' के माध्यम से चर्चा मे आया है । यथा—

पाडतो पडवेस, अमळावत अवसाणसिध ।
जुडियो जण जण 'जूजुवौ' मुडियो नहीं महस ॥113॥
—वचनिका, पृ 283

वचनिका के सम्पादक श्री शम्भुसिहजी मनोहर ने 'जूजुवौ = अलग अलग अथ देते हुए अन्य उदाहरण इस प्रकार दिये हैं—1 इम विनवती व्याहणउँ हवउँ महिला जाउ गिउँ जूजउ 2 जूजुआ मिरं बासे जिता हुआ

जीण सिरहैमरा, 3 घडवाजइ 'जूजुवा' सधाण। (उदा क्रमश 1 विद्या विलास पवाडउ, 2 राजरूपक, पृ, 3 महादेव पारवती री वेलि)

श्री काशीराम शर्मा ने इसका अथ 'जूत गया' किया है, जो निराधार है। इसका एक रूप 'जुआ जूओ' भी मिलता है। यथा—

धाउ धाउ पचामृत घाते जण जण पूगो जुआ जुओ (राज वी भी भाग 1 पृ 38)

'जूजुआ' कदाचित् जुआजुआ का ही सक्षिप्ती कृत रूप है, जो समवत 'जुदा जुदा' से व्युत्पन्न है। (वचनिका पृ 284)

श्री काशीरामजी शर्मा ने श्री शर्मुसिहजी के उपयुक्त विवेचन को अस्वीकार करते हुए लिखा है—' जुजुवो का अथ अलग अलग' बताकर चार उदाहरण दिये है। उनम केवल सख्या 2 और 3 म यह शब्द प्रयुक्त है और दोनो में अथ है—जूता न कि अलग अलग। फिर भी लिखते हैं—(शर्मा ने इसका अथ 'जूत गया' किया है, वह निराधार है।) (वचनिका का सपादन, पृ 84)

अन्य उदाहरण—

1 भोजन भगति जुगति जूजुइ।

—सदयवत्सवीर प्रबध पृ 501

2 जाम जाम ताइ भगति जूजुई।

—महादेव पारवती री वेलि 350

3 पथी वीर 'जूजुआ' पधारया
पुर भेळे हुइ मीयउ प्रवेस।

—वलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री द्वा 75

पथि=मारगि आगइ पाछइ जुदइ जुदइ चालिवइ करी वीर।

—वनमाली बल्ली (अप्रकाशित)

जोइ

'जोइ' शब्द वेलि श्रीकृष्ण रुक्मणी री के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

जोइ जळद पटळ दळ सामळ ऊजळ,
घुरइ नीसाण साजि घणघोर।
प्रोळि प्रोळि तोरण परठीजइ,
मंडइकिरि तंडव गिरि मोर ॥

—वेलि, द्वाला, 40

वेलि के नवीन टीकाकार श्री दीक्षितजी ने 'जोइ' का हिन्दी अर्थ 'जा या जो भी, पडाल, स्त्री' दिया है, —सम्पादक त्रय (ठा रामसिहजी पारीकजी व स्वामीजी) ने इसका हिन्दी अर्थ 'जो' दिया है तथा श्री नरोत्तमदासजी स्वामी ने 'जोई' का हिन्दी अर्थ 'देखो जानो' दिया है।

परन्तु प्राचीन टीकाकारो का मत आधुनिक टीकाकारो से भिन्न है। सस्कृत की टीका सुबोध मजरी मे 'जोइ इति स्त्री पर्याय' लिखा है, वनमाला वल्ली बालावबोध मे 'जोइ ए स्त्रीरउ नाम पर्याय छइ' उल्लेख किया है तथा नारायण वल्ली बालावबोध मे 'जोइ एहवउ नाम स्त्रीरउ आणिवउ सिंधू भाषायइ प्रसिद्ध' बताया है। अतएव उपर्युक्त सभी टीकाकारो के अभिमत एव प्रसग को देखते हुए 'जोइ' का 'स्त्री' का पर्याय मानना ही समीचीन है क्योकि 'जोई (क्रि प)—देखना' यहा पर अभिप्रेत नही है।

जौख

जौख शब्द 'वचनिका राठौड रतनसिघजी महेसदासोत री' के माध्यम से चर्चा मे आया है। यथा—

सतखणा सोव्रन मै आवास गोख जोख चित्राम चित्रसाळा रचाई (30)

—वचनिका, पृ 365

वचनिका' के सम्पादक श्री काशीरामजी शर्मा ने 'जौख' का अर्थ स्त्री (योषित्) किया है जो प्रसगानुकूल नही है।

'जौख' का अर्थ 'क्रीडा, मौज', 'आनन्द' होता है तथा 'गोख-जौख' शब्द प्राय साथ ही आते हैं।

अन्य उदाहरण—

1 गौड़ कछावा राठौड़, गोलां 'जोल' करत ।

—राणा अमरसिंह रा दोहा, (वचनिका 369)

2 गुमरधारिया मिलै गोलां, जोधपुर गढ कर' जोला' ।

—सूरज प्रकास, भा 2, पृ 229

झांखइ

प्रस्तुत झखइ शब्द 'ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम से चर्चा का विषय बना । यथा—

आदीता हू ऊजलो, मूख मथ ।
झीणा कप्पड़ पहिरणइ, जाणि झखइ सोत्रथ ।।

—ढोला मारू रा दूहा, 463

'झांखइ' शब्द का सम्पादक त्रय (ठा रामसिंहजी, पारीकजी व स्वामीजी) ने झलकता अर्थ किया है जो प्रसंगानुकूल नहीं है । डा माताप्रसादजी गुप्त ने संपादक त्रय के अर्थ को अमान्य करते हुए इसे '> प्रा झख=संतप्त' मान कर 'मानो सोना तप रहा है' । अर्थ किया है, जो संगत नहीं है ।

झखइ शब्द का वास्तविक अर्थ— कांतिहीन ढका हुआ धुमला आदि होता है । इसके अनुसार उपर्युक्त दोहे के उत्तरार्द्ध का हिन्दी भावार्थ होगा— (मारवणी ने) महीन वस्त्र धारण किये हुए है, (ऐसा प्रतीत होता है) मानो (उसका शरीर) धूमिल स्वर्ण हो अथवा आच्छादित स्वर्ण हो ।

अन्य उदाहरण—

1 देव तणो मुख 'झांखउ' दीसइ ।

—महादेव पार्वती री वेल, 360

2 भयण वयण झाखु करी, बइठउ घरि अणाहि ।

—माधवानल काम कंदला प्रबंध, पृ 6

रूप भेद—झाखो, झाखु ।

विशेष—'झखणा' शब्द का प्रयोग अलूल जलूल बकने के अर्थ में भी किया जाता है ।

झाझी

'झाझी' शब्द 'ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

> अति घण ऊनमि आवियउ, 'झाझी रिठि झडवाय।
> बग ही भलाभ बप्पडा, धरणि न मुक्कइ पाइ॥
>
> —ढोला मारू रा दूहा, 257

'ढोला मारू रा दूहा' के सम्पादक त्रय (ठा रामसिंहजी, पारीकजी व स्वामीजी) ने 'झाझी' शब्द का हिन्दी अर्थ 'अत्यन्त' दिया है जो ठीक है, परन्तु टिप्पणी में 'झाझी' शब्द की व्युत्पत्ति 'दग्ध' से मानी है, जो संगत नहीं है। श्री माताप्रसादजी गुप्त ने संपादक त्रय के उपर्युक्त अर्थ को अस्वीकार करते हुए इसे- झाझी > झख=क्लेश'—अर्थ किया है, जिसका प्रसंग से कोई मेल नहीं है। केवल ध्वनि साम्य देखकर ही अर्थ का अनर्थ किया है।

'झाझा व झाझी' राजस्थानी भाषा में बहुतायत से प्रयुक्त विशेषण है, जिसका हिन्दी अर्थ—बहुत, घना, अत्यन्त, सुन्दर, उपयुक्त इत्यादि होता है।

अन्य उदाहरण—

1 झाझी निद्रा धापइ अंगि।

—ढोला मारू रा दूहा, परिशिष्ट

2 खिल झूलर मृगाळो माळ 'झाझी'।

—अमराजती एकादशी प्रबंध (ह लि)

3 झाझी प्रात घणी विधआणी, कयतणी कुण सेव करै।

—रघुनाथ रूपक, पृ 102

4 'झाझो नीर सरोवर मोटा।

—कान्हडदे प्रबंध, पृ 82

5 जोजे करसी झाझी आळ।

—झवेरचन्द मेघाणी कल्लोल (गु) पृ 73

6 जिहां जिहां झाझा खडहड पाणी तिहां दियइ मेल्हाण।

—कान्हडदे प्रबंध, पृ 10

टालिमा

टालिमा' शब्द 'ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

> घरि बइठां ही आविसयइ, लाखे तियां लदम।
> तिणमइ लेस्यां टालिमा, बावडमुहां विडंग॥
>
> —ढोला मारू रा दूहा, 227

प्रस्तुत कृति के सम्पादक त्रय (ठा. रामसिंहजी, पारीकजी व स्वामीजी) ने 'टालिमा' का अर्थ 'चुने हुए' (पृ. 70) किया है तथा टिप्पणी (पृ. 489) में टालिमा (दे.) हिन्दी टालना = चुनीन्दा, 'छंटे हुए' लिखा है। परन्तु डा. मातापसाद गुप्तजी को इस अर्थ से सन्तोष नहीं हुआ। वे लिखते हैं टालिमा टाल (दे.) कोमल अवस्था का, किशोर। (बीज आने से पूर्व की अवस्था के फल को टाल कहते हैं (प्रा. स. म. से 'टालिमा' बना है। (ना. प्र. पत्रिका, वर्ष 65 अंक 1)

अब डा. गुप्त जी को कौन समझाए कि प्रसंग घोड़ों का है। 'लाखों की संख्या में घोड़े लेकर (व्यापारी) आएँगे, उनमें से चुनीन्दा घोड़े ले लेंगे, सुन्दर से सुन्दर। यहां पर किशोर अथवा कोमल अवस्था का क्या प्रसंग! पर डा. गुप्त जी तो राजस्थानी भाषा के पीछे लट्ठ लेकर पड़े हैं और पा. स. म. कोश उनके हाथ पड़ गया, अब भगवान ही मालिक है।

टीलौ

टीलौ शब्द भी वचनिका राठौड़ रतनसिंघ महेसदासोतरी के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

> टीलौ राजधरा छळ तोनूं। 45/29
>
> —वचनिका, पृ. 94

वचनिका के सम्पादक श्री शम्भुसिंहजी मनोहर ने 'टीलौ राज = राजतिलक भावार्थ में राज्याधिकार। श्री शर्माजी ने इसका अर्थ 'शोभित हो' किया है जो निरा अनुमानिक और निराधार है। राजस्थानी में टीलौ' शब्द संस्कृत तिलक से उत्पन्न है जैसाकि 'उक्तिरत्नाकर, से सिद्ध है,

जिमम 'टीलो' (रूप भेद टीलउ) श-ᵐ की व्युत्पत्ति 'तिलक' से दी गई है' (उक्तिरत्नाकर, पृ 32) हिन्दी व्याख्या प्रस्तुत की है। श्री काशीरामजी शर्मा अपने पूव अथ पर दृढ रहते हुए लिखते हैं ' अब हम उन्ह 'टीलो' शब्द का इतिहास बताएँगे जो उक्तिरत्नाकर जसी सतही पुस्तको मे नही मिलगा। आपका यह कहना ठीक है कि टीलो' का पिता 'तिलक' था। पर उस 'तिलक के पिता नाम हम बताएँ 'तिल था। सुदरियो के उज्ज्वल कपोला पर तिल होता तो उसकी शोभा कइ गुना बढा देता। व्रज के कवि ने कहा—

लेखन मे बेंदी दिए, आक दस गुनो होत।
तिय ललाट वदी दिए अगिनत बढत उदोत ॥

तो, यो तिल से शोभा बढते देख राजाओ का भी मन चला, ऋषिमुनियो का भी चला। बढिया बढिया अगराग ढूढे जाने लगे। चदन, रोळी, सिन्दूर, केसर आदि के तिलक आविष्कृत हुए। पर हमे तो आज भी देवियो के प्रसग म 'तिल से बढकर कुछ नही लगता।—शम्भुसिहजी का मत वे जाने।

ता इस सरस इतिहास के बाद पुन गभीर विषय पर आ जाएँ। 'रतन ने जसवतसिंह से यही कहा कि 'मरन का अधिकार मुझे सौपिए (मरण तणो सावी दे मानू) और आप (राज) घरा की शोभा बढाइए।' शम्भुसिहजी ता इतिहास के विद्वान हैं, यह तो जानत ही हैं कि जसवतसिंह का राजतिलक तो बहुत पहले हो चुका था। (वचनिका का सम्पादन, पृ 62)

श्री काशीरामजी शर्मा न 'तिलक से व्युत्पन्न 'टीलो' को मान कर भी अपन 'शोभा वाल अथ पर डटे रह। इसके सबध मे क्या कहा जाये !

राजस्थानी भाषा के काव्यो एव वतमान कालिक बोलचाल मे भी 'टीलो' का अथ 'तिलक' ही लिया जाता है और यह ठीक भी है।

अन्य उदाहरण—

1 सहित जोधपुर सूर वळोधर, 'टीलो रायमालद तणो।

—उक्तिरत्नाकर पृ 32

2 चत्रगढ तणा 'टीलो कमल चढता, साकूआ दिया दरबार 'टीलो'।

—*प्रा रा गी भा 10* पृ 50

3 टीळउ' काढि खडग दोघउ हथि, रिणथभोरिवडउ हूजउ हाथ।

—हम्मीरायण पृ 30

4 नळवट टीली' न झाला झबुक, नण बाजळ सायुँ रे।

—रास सहस्त्रपनी, 10

5 निळवट कुकुम पीयळ पीळी माहे मृगमद नीं 'टीली' रे।

—वही, 25

6 रच सुन्णी स्याम टीलो रट।

—रघुवरजसप्रकास, पृ 75

डबर

डबर' शब्द 'वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी महेसदासोतरी' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

घूवारव दव धोम, खेहारव 'डवर' खरा।
भ्रमत रौद्रायण बियो, व्योम विचाळ व्योम ॥33॥

—वचनिका, पृ 63

वचनिका के सम्पादक श्री शम्भुसिंहजी मनोहर ने खेहारव डबर शब्द का हिन्दी अर्थ =धूलिसमूह प्रचंड आंधी या तूफान जो आकाश को आच्छादित कर देता है किया है श्री काशीराम शर्मा ने इसका मेघ घटा अर्थ कर दिया है, जो भ्रांत है। धूलिसमूह या आंधी तूफान के अर्थ में डिंगळ काव्यों में इसका प्रचुर प्रयोग हुआ है। यथा—घर हूर पाखरां बाजत घूघट, दीह सूझ नहीं खेहर डबर। (दयालदासरी ख्यात, भा 2, पृ 110) 2 खुर रव खग 'डबर खह, मिलिया जाण बारह मेह। (गजगुणरूपकबंध, पृ 121), 3 हालिया थट रजडमर' होय (सूरजप्रकास, भा 1, पृ 229), 4 जिम मह खबर धूलिडबर' एम अबर ऊछरयो। (वंशभास्कर, पृ 3118)। वचनिका, पृ 64

श्री काशीरामजी शर्मा ने श्री शम्भुसिंहजी के उपयुक्त विवेचन को अमान्य करते हुए लिखा है— दो स 33 में धुएं अग्नि और रेत के बादलों से आकाश के भर जाने पर कल्पना की गई है कि ऐसा लगता है मानो आक्रान्ता यवनों ने आकाश के बीच दूसरा आकाश रच दिया हो। पर शम्भुसिंहजी 'खेहाराव डबर'=धूलिसमूह बताकर कहते हैं—शर्मा ने इसका अर्थ मेघ घटा' कर दिया है जो भ्रांत है। यह फिर जान बूझ कर भरे शब्दार्थों का गलत प्रस्तुत

करने का जघन्य प्रयास है। मैंने मूल ग्रन्थ के पृष्ठ पन्द्रह पर शब्दार्थ यों दिए हैं—सेहारद=रेत, डवर=मेघ घटा। यों 'सेहारडडबर' का मेरा दिया अर्थ है 'धूलिका बादल'। 'डवर' का अर्थ मेघ ही होता है 'समूह' नहीं। 'धूलि समूह' का क्या अर्थ? क्या बहुत सारी धूलें मिलकर आ गयीं? हम तो नहीं मान सकते। रही बात धूल के बादलों की। सो जब आकाश में धूल उड़कर सूर्य को आच्छादित कर देती है तो उसे 'धूल का बादल' कहते हैं। (वचनिका सम्पादन, पृ 54 55)

'डबर' शब्द पर इतना कुछ लिखा जाने पर भी उसका 'अर्थ स्पष्ट नहीं हो सका है। यह शब्द हिन्दी काव्यों में भी बहुतायत से प्रयुक्त हुआ है। 'संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर' में 'डवर' शब्द का इस प्रकार विवेचित किया गया है—

'डंबर—सज्ञा पु (स) 1 आडम्बर, ढकोसला। 2 विस्तार। 3 एक प्रकार का चंदवा। चदर छत। 4 शोभा। छटा। सजावट। बनावट। उदाहरण तापर सवारयो सेत अबर को डबर, सिंगारी स्याम सखिनि निहारी काहू न जानी।—शृगार। (सप्तम सस्करण (पुनर्मुद्रित) स 2028 वि पृ 404)'

उपर्युक्त विवेचन में 'बादल' शब्द का कोई पर्याय नहीं आया है। 'डबर' के जितने ही उदाहरण मिलते हैं, उनमें यह शब्द किसी एक ही 'रूढ' अर्थ में प्रयुक्त हुआ दृष्टिगोचर नहीं होता है। प्रसग के अनुसार 'डबर' के विभिन्न अर्थ होते हैं। यथा—

1 पुनि डबर' (=   ) डारं पनि उचिय।

—पृथ्वीराजरासो, 18/67

2 छवि अबर डबर (=   ) वासविय।

—वही, 19/84

3 फिर 'डबरी (=   ) सेन माहे फरससो।

—नागदमण, छद, 45

4 सबदे स मैमत तुखार वाठ स गमर
हठ हम्मीर चकव्वै किया अ आडा डबर (=   )।

—हम्मीरायण, मालकवित्त, 5

5 अलावदीन जग दम्मणा किया हमीर डबर'(=   ) कर।

—वही 8

6 मरहुक्क कर 'डबरा' (=   ), मत कर धोखा मन्न ।
—राजस्थानी नीति दूहा, 527

7 दीह गयउ डर डबर (=   ) नील नीझरणह ।
—ढोला मारू रा दूहा, 491

ढीली

'ढीली शब्द' ढोला मारू रा दूहा के माध्यम से चर्चा में आया है। यथा—

1 ढोला 'ढीलीहर' किया, मूक्या मनह विसारि । 138
2 ढोला 'ढीलीहर' मुझ, दीठउ घणे जणेह । 139
—ढोला मारू रा दूहा

'ढोला मारू रा दूहा' के सशोधक श्री माताप्रसादजी गुप्त ने दोहा सख्या 138 म 'ढीलीहर' को दिल्ली+गृह तथा दोहा सख्या 139 मे 'किन्तु स्पष्ट ही 'दिल्ली+हर=दिल्ली+धरा=प्रदेश है। (काशी ना प्र पत्रिका वर्ष 65 अक 1)

'ढीली' का कई स्थानो पर दिल्ली के पर्याय के रूप मे प्रयोग हुआ अवश्य है, परन्तु प्रस्तुत प्रसग मे यह इस अर्थ मे प्रयुक्त नही हुआ है। यहा 'ढीली' का अर्थ शिथिल', 'ढीला' ही होगा तथा हर' का अर्थ होगा इच्छा'। अत *'ढीलीहर=शिथिल इच्छा वाले' अर्थ होगा।*

'ढीली' 'ढीला' तथा 'ढीलो' शब्द रात दिन की बोलचाल म भी व्यवहृत होता है।

अन्य उदाहरण—

1 वग्ग ढीली किय ।
—गोगाजी रा रसावळ ।

2 मम ढील करे हिव हुए एकमन,
जादू आदवेद्र जन्न ।
—वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणीरी, 45

तार

जिम जिम मन अमले किअइ, 'तार' चढती आई।
तिम तिम मारुणी तणइ, तन तरणापउ थाई॥
—ढोला मारू रा दूहा, 12

सम्पादक त्रय (ठा रामसिंहजी, पारीकजी, स्वामीजी) ने 'तार चढती जाई' का हिन्दी भावार्थ—'ऊषा चढता जाता है'—किया है। इस अर्थ को अस्वीकार करते हुए डा गुप्तजी ने 'तारकमाला चढ़ती जाती थी' अर्थ प्रस्तावित किया है। (ना प्र पत्रिका, वर्ष 65 अक) जो प्रसंगानुकूल नहीं है।

'तार चढना' राजस्थानी भाषा में एक मुहावरे के रूप में व्यवहृत होता है जिसका अर्थ 'लहर चढना अथवा लहर आना' होता है। बोलचाल की भाषा में भी इस शब्द का व्यवहार धन, पद, यौवन तथा नशा के 'मद' की अवस्था में किया जाता है।

अन्य उदाहरण—

1 हूहू रव तार दुरंत वसत।
—प्राकृत पंगलम्, 249

2 पातर प्रीत पतग रग, तात मद री 'तार'।
पहर पाछली ऊतरन, जात न लागे वार॥
—दोहा संग्रह (ह लि)

3 मादक मैन उद्दाप भिय बढ्ढि सुगंधन 'तार'।
—पृथ्वीराजरासो, 205

4 चित मत्त गयद खु 'तार नत्थि उत्तरय।
—वही 289

त्रिविधी घडा

त्रिविधी घडा शब्द का प्रयोग डिंगल में वीर रस में हुआ है। यद्यपि यह शब्द राजस्थानी-वीर साहित्य का बहुप्रयुक्त शब्द है परन्तु इसके सम्पादक श्री मोतीलाल मेनारिया ने इस शब्द का एक बहुत ही विचित्र अर्थ

दिया है। यथा—

तिनमा कटक त्रिविधी घडा।—2/25

त्रिविधी घडा=गर्मी के दिनो मे शिवजी की मूर्ति के ऊपर लक्डी की तिपाई (त्रिपादिका) बनाकर उस पर जल का घडा रख देते हैं। उस घडे के पेंदे मे एक छोटा सा छेद बनाकर उसमे कपडे की बत्ती डाल देते हैं जिससे थोडा थोडा पानी दिन भर गिरता रहता है।

यद्यपि प्रस्तुत व्याख्या का उल्लिखित शब्द के साथ कोई मेल नही है। विद्वान सम्पादक ने त्रिविधी को त्रिपादिका एव घडा को घट का पर्याय मान कर अर्थ किया है, जिसकी प्रसग के साथ कोई सगति नही है।

प्रस्तुत प्रसग सेना का है। त्रिविधी का सुस्पष्ट अर्थ होता है तीन प्रकार की अर्थात् रथ अश्व और पदातिक।' 'घडा' का अर्थ होता है सेना। अत पूर्ण पद का अर्थ होगा—'उस सेना मे तीन प्रकार—रथ अश्व और पदातिक—की सेना है।

अन्य उदाहरण—

1 थाट जुडती त्रिविध घड।

—महादेव पार्वती की वेलि, 377

2 घाय रमाडइ तिविध घड।

—वही, 211

3 घडा घेघूवणी आणि भाद्रव्य अणी।

—गोगाजी रा रसावळा 19

4 घड पाल्हू तणी जिग राव घडा।

—पाबूजी धांधल रो छद 32

दंगि

दंगि' शब्द 'कुतुबशतक' के माध्यम से चर्चा मे आया है। यथा—

जाण अग्नि अणगिया, पडी पुराणइ दंगि'।

—कुतुबशतक 28

प्रस्तुत कृति के सम्पादक श्री माताप्रसादजी गुप्त ने 'दगि' शब्द का अर्थ 'दग>द्रग=महानगर' किया है, जो नदाच पा स म के आधार पर किया गया प्रतीत होता है। डा गुप्तजी ने इस प्रकार के ध्वनि-साम्य वाले अनेक शब्दों का मनमाना अर्थ किया है, जिससे महान् अनर्थ की सृष्टि हो गई है।

'दगि' 'दग' अथवा 'द्रग' रूप भेदों के साथ इस शब्द का प्रयोग राजस्थानी काव्यों में यत्र तत्र देखने को मिल जाता है। 'दगि' का अर्थ होता है 'मैदान, समतल भूमि' होता है और इसी अर्थ में उपर्युक्त उद्धरण में प्रयुक्त हुआ है।

अन्य उदाहरण—

1 पही फिर अगि कि 'दगि' पळाळ।

—राजरूपक, पृ 801

2 कूलडियां कलरव कियउ, पछि पाछिले 'दरगि'।

—ढोला मारू रा दूहा, 55

3 उठ मोज ऊछ जुरे आनि 'दग'।

—पृथ्वीराज रासउ, 11/12

दतूसलि

दतूसलि शब्द रास और रासान्वयी काव्य के माध्यम से चर्चा में आया है। यथा—

पाणीय पूणीय पोखवइ 'दतूसलि' दातडी।

—रास और रासान्वयी काव्य 122

प्रस्तुत कृति के सम्पादक द्वय (श्री दशरथजी शर्मा व श्री दशरथजी ओझा) ने दतूसलि का अर्थ स दन्तमूशल्य' अर्थात् 'दांत का कांटा' किया है, जो भ्रांत है। सम्पादक महोदय यहां पर भी ध्वनि साम्य के आधार पर चक्कर में चढ़ गये हैं। केवल ध्वनि साम्य के आधार पर किया गया अर्थ संगत ही हो, यह आवश्यक नहीं है।

'दतूसलि' का प्रसिद्ध अर्थ 'हाथी' होता है और उपर्युक्त उद्धरण में इसी अर्थ में व्यवहृत हुआ है।

अन्य उदाहरण—

1 सुदि 'दतूसला' झाडि तूट डळा।

—गोगजीरा रसावळा, 22

दउढ

'दउढ शब्द' 'रास और रासान्वयी काव्य' के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

दळ दढोळिउ 'दउढ' वरीम।

—रास और रासान्वयी काव्य 161

प्रस्तुत कृति के सम्पादक द्वय (डा दशरथजी शर्मा व डा दशरथजी ओझा) ने दउढ' शब्द का हिन्दी अर्थ सात्तेतीन दिया है जो भ्रांत है। 'दउढ' का वास्तविक अर्थ साढ़ अर्थात् डेढ' होता है।

अन्य उदाहरण—

1 'दउढ' वरसरी मारवी त्रिहुं वरसांरउ कंत।

उणरो जोवन वहिगयउ तू किउ जोबन वंत॥

—ढोला मारू रा दूहा 429

दरवक

दरवक शब्द भी ढोला मारू' के माध्यम से प्रकाश में आया। यथा—

उत्तर आजस उतरउ पल्लाणिया दरक्क'।

दहुती गात कुंआरिया थळजाळी वळी अक्क॥

—ढोला मारू रा दूहा, 289

उपर्युक्त दोहे में प्रयुक्त 'दरक्क शब्द' को सपादक त्रय (ठा श्री रामसिंहजी श्री सूर्यकरणजी पारीक व स्वामीजी) ने हिंदी के 'दरकना' शब्द का साम्य मानकर इसका अर्थ फटना' दिया है जो संगत नहीं है। दरक्क शब्द का सही अर्थ 'ऊंट होता है। तभी पलाणियां क्रिया की

(ना प्र पत्रिका, वर्ष 65, अंक 1) जिसका उपयुक्त प्रसंग में कहीं पर भी मेल खाता दृष्टिगोचर नहीं होता है।

सम्पादक त्रय का अभिमत ठीक है। दाख' चाहे आख' के साम्य पर बनी हो अथवा नहीं, इसका अर्थ कहना' ही होता है।

अन्य उदाहरण—

1 'दाखवि' मरवि कियइ परि दईत।

—महादेव पारवती री वेलि 368

2 ढाढाजे साहिब मिळइ, यूं दाखविया' जाई।

—ढोला मारू रा दूहा, 116, 118 119

दाय

'दाय शब्द 'ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

पलाणिय पवने मिळइ, घड़िये जोइण जाय।
रहबारी, ढालउ कहइ सो मो आवइ 'दाय'॥

—ढोला मारू रा दूहा 308

प्रस्तुत कृति के सम्पादक त्रय (ठा रामसिंहजी पारीकजी व स्वामीजी) ने दाय का हिंदी अर्थ 'पसंद' दिया है तथा आगे के दोहे सं 80 में प्रयुक्त (विरह वियापी मारुई नहीं रावण कउ दाय) 'दाय शब्द का हिंदी अर्थ 'उपाय (पृ 25) किया है। डा माताप्रसादजी गुप्त ने सम्पादक त्रय के अर्थ को स्वीकार करते हुए लिखा है— दाय' शब्द उपाय' के साथ प्रायः इसके समानार्थी के रूप में अवधी के एक मुहावरे में आता है। दाय — उपाय। 'दाय का अर्थ साधन' ज्ञात होता है और तीनों स्थलों (दो सं 80 307 व 308) पर अर्थ कदाचित् यही होना चाहिए। (ना प्र प वर्ष 65, अंक 1)

दाय' शब्द रात दिन बोलचाल की भाषा में भी व्यवहृत होता है— थारी दाय आवे तो आईजे अथवा म्हनै तो आ वात 'दाय नी आई नी। अतएव दाय का अर्थ पसन्द, मनोनुकूल इच्छित ठीक इत्यादि अर्थ लिया जाना चाहिए।

दिवाजा

'दिवाजा' शब्द राजस्थानी काव्यों में पर्याप्त मात्रा में प्रयुक्त हुआ है। विभिन्न स्थानों पर सम्पादकों ने इसके तरह तरह के अर्थ किये हैं। वास्तव में 'दिवाजा' का हिन्दी अर्थ 'शोभा' होता है। इसके अनेक उदाहरणों से इसी 'शोभा' अर्थ की पुष्टि होती है। यथा—

1 दिखाळ किसू नाग वाळा 'दिवाजा,

—नागदमण,

2 घर नी वात कहू हू लाजू, तो आगलिस्यु करू दिवाजू'।

—पद्मरथ राजा की कथा (अप्रकाशित)

3 आळउरइ आवइ गच्छराज, वाजित्र वाजइ बहुत 'दिवाज।

—ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह 151

4 नूणिया वस विराजइ, दिन दिन ए अधिक 'दिवाजइ।

—वही 242

5 मारण पल्लीनगर चढयउ सो करत दिवाजा'।

—वही, पृ 374

दीह

दीह' शब्द वेलि श्री कृष्णरुक्मिणीरी' के माध्यम से चर्चा मे आया है। यथा—

नदी 'दीह' वधइ सरनीर घटइ निसि,
गाढ घरा द्रव हेमगिरि।
सुतप छाह तदि दीघ जगतिमिरि
सूर राह किय जगत्र सिरि॥

—वेलि, द्वाला 187

वेलि के सम्पादक श्री दीक्षितजी ने 'दीह' का हिन्दी अर्थ 'बड़ा दिया है। वस्तुतः इनका समस्त संस्कृत का 'दीघ रहा है। पूर्वापर सबध को पहचाने बिना इस प्रकार के अर्थ किये जाते रहे हैं। 'दीह' यहा पर दिन' का वाची

है। गर्मी की ऋतु मे 'दिन' बड़े हो जाते हैं, कवि का उसी ओर सकेत है।

अन्य उदाहरण

1 'दीह=दिनानि'—सुबोधमजरी सस्कृत टीका।

2 जेठ मासइ नदियारइ पाणीरइ परि दिन वध्या।'

—वनमालावल्ली बा बो टीका (अप्रकाशित)

दोमज

'दोमज' शब्द 'राजरूपक' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

देवीदास करन सुत 'दोमज'।

—राजरूपक पृ 748

राजरूपक के सम्पादक प रामकरणजी आसोपा ने इस 'दोमज' शब्द का हिन्दी अर्थ 'बमवगानी बड़ा भुजाओ वाला' दिया है, जो प्रसगानुकूल नही है। कदाचित् सपादक ने 'दोमज' शब्द को 'दोभुज' मानकर बड़ी भुजाओ वाला अर्थ कर दिया हो। परन्तु इसका वास्तविक अर्थ होता है—'पुत्र'।

अन्य उदाहरण—

1 'दोमज मा दीस दुरत्त।

—जीवणाकल्हाइत गाता माया (अप्रकाशित)

धज्ज

धज्ज शब्द वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी महेसदासोतरी के माध्यम से चर्चा म आया है। यथा—

धणी उपर जूण भारत धज्ज।

गिराव जिका आठुवा पाणि गज्ज॥

—वचनिका पृ 44

वचनिका के सम्पादक श्री काशीरामजी शर्मा ने उपर्युक्त पद्याश का हिन्दी अर्थ इस प्रकार किया है—'घोडो के स्वामी अपने घोडा पर ध्वजाए

अन्य उदाहरण—

1 धवळ न अटक 'धुर' वहे, वासू पाणी कीच ।
—बाकीदास ग्रंथावली, भा 1, पृ 36

2 श्री सरसति 'धुरि' वीनऊँ, मागू बुद्धि प्रकाश ।
—वर्णक समुच्चय, भा 2, पृ 202

3 'धुरा' लगइ अथचल अवधूत ।
—महादेव पार्वती री वेलि 13

4 श्रोल घुलत गजत 'धुर' ।
डिंगळ मे वीररस, 1/73

5 'धुरा' पोखियो पान न धान थायो ।
मानदमण, 80

6 आसाढ 'धुर' असटमी ।
—भडुलपुराण ।

निगेम

निगेम शब्द 'वचनिका राठौड रतनसिंहजी महेसदासोतरी' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है । यथा—

नरवर सूर निगेम, मारग मधिरी सामरी ।
आवै जाव अपछरा, जगि अरहट घड़िजेम ।।72।।
—वचनिका, पृ 225

वचनिका के सपादक श्री शंभुसिंह मनोहर ने 'निगेम' का हिंदी अर्थ —निष्पाप पावन किया है जो प्रसगानुकूल नही है । 'निगेम' शब्द का प्रयोग यहा मार्ग के लिए हुआ है अत प्रस्तुत दोहे का हिन्दी भावार्थ इस प्रकार किया जा सकता है—

'युद्ध मे मध्य नरश्रेष्ठ वीरो के मारग मे अप्सराए खाली आती हैं तथा सूरो का वरण कर भरो ˋ । जिस प्रकार सासारिक अर हट की ॱ

अरहट की घड़िया भी ऊपर से खाली (रिक्त) आती हैं और नीचे पानी से भर कर वापस लौटती हैं। इस उपमा से अप्सराओं की स्थिति को स्पष्ट किया गया है।

निवात

'निवात' शब्द डिंगल का एक विशिष्ट शब्द है। इसका प्रयोग राजस्थानी की डिंगल शैली के अतिरिक्त लोक शैली में भी देखा जाता है। परन्तु राजस्थानी ग्रंथों के हिन्दी टीकाकार प्रायः उत्तरप्रदेशीय विद्वान रहे हैं, अतएव उन्होंने इस प्रकार के अनेकों शब्दों का संस्कृत एवं प्राकृत के साथ ध्वनि साम्य देख कर अर्थ के स्थान पर अनर्थ प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ 'वीसलदेव रास' के निम्नांकित पद्यांश द्रष्टव्य हैं—

1 आछा चावळ घणीय 'निवात' —154/4

—म. तारकनाथ अग्रवाल

2 घणिनइ दूध कटारइ घणीय 'निवात'।—155/3

उपर्युक्त पद्यांशों में प्रयुक्त शब्द 'निवात' का सम्पादक श्री तारकनाथ अग्रवाल ने 'नवनीत, मक्खन' अर्थ किया है, जो वास्तविक अर्थ से कोसों दूर है। 'निवात' का अर्थ होता है—'चीनी, शक्कर, बूरा, मिश्री।' चावलों एवं दूध के साथ चीनी की ही बहुत उपयोगिता है, यदि घृत भी हो तो काम चल सकता है। 'महादान आछइ घडइ, दूध माहि सक्कर पडइ।' अचलदास खीची री वचनिका (4/1) से इस तथ्य की पुष्टि होती है।

अन्य उदाहरण—

1 *माड दूध निवात सजोइ, घिउ लापसी कलेऊ होइ।*

—जिणदत्त चरित्र, 412

2 घृत पीजिय आणि निवात घोळी।

—नागदमण, 64

निहस

'निहस' शब्द 'वेलि श्रीकृष्ण रुकिमणी री' के माध्यम से प्रकाश में आया। यथा—

आगम सिसुपाळ मडियइ,
नीसाणे वहिते निहस ।

वेलि के नवीन सम्पादक श्री दीक्षित ने निहस शब्द का हिन्दी अथ प्रहार किया है। यह सपादक त्रय (ठा रामसिहजी, पारीकजी व स्वामीजी) के किये हुए अथ का अनुकरण है जो प्रसगानुकूल नहीं है। निहस शब्द का वास्तविक अथ होता है— निर्घोष ध्वनि । वेलि की प्राचीन टीकाओ— सुबोधमजरी दूढाडी, वनमालीवल्ली नारायणवल्ली मे इसी अथ को स्वीकार किया गया है।

अन्य उदाहरण—

1 'सिसुपालरइ आगम पहिला कुदणपुर नगरइ उच्छव माडया । वीवाहरा वधामणा माडया । ते किम कहइ ? नाना प्रकारि वाजारउ निहस=सबद, निर्घोष हुवालागउ ।
—नारायणवल्ली, भा बो (हस्तलिखित)

2 निहस बाणासाबाद, गाजियो निहाव ।
—प्रा रा गी, भा 1 पृ 128

3 निवसउ निहाय धरणि धमधमइ ।
—सदयवत्सचरित्र, पृ 646

4 निहस्स नगारा सुरारा सवारा ।
—नागदमण, 105

5 माला पड धमक त्रबाला 'नीद्रस ।
—प्रा रा गी, भा 1, पृ 106

6 'निद्रसत निसाण निहाव ।
—वही भाग 2, पृ 22

7 हुवा सको हैरान नरसुर कर देत निहसि
—वचनिका, पृ 292

8 नाइ समर निडार, नागा साया निहसियो ।
—वही पृ 334

निहाव

'निहाव 'शब्द वचनिका राठौड़ रतनसिंहजी री' के माध्यम से चर्चा मे आया है। यथा—

> निपट विह्न दळ आया नडा ।
> नर सूरा भ्रित आया नेडा ।
> नौबति सोर घटढि धुबि नेडा ।
> नळि 'निहाव' गजिया नडा ।
>
> —वचनिका, 39 (पृ 900)

वचनिका के सम्पादक श्री शम्भुसिंहजी मनोहर ने निहाव का अथ 'ध्वनि, घोप' करते हुए लिखा है निहाव' शब्द का अथ श्री काशीरामजी शर्मा ने 'प्रज्ज्वलित होकर' किया है जो निराधार है। 'निहाव' शब्द यहा 'ध्वनि या घोप' है। 'नाळि निहाव', अर्थात् तोपों की गजन ध्वनि। उदाहरण —1 हुवो मेरघाव, निसाण निहाव। (गजगुण रूपकबध, पृ 101), 2 नीघक घाव दमाम 'नीहाव'। (रा वी गी, भा 1, पृ 22), 3 गाजियो गयण गोळा निहाव' (गजगुण रूपक बध, पृ 214), 4 साय 'निहाव' थयो नीसाणे (राजरूपक, पृ 66) श्री मूलचन्द 'प्राणेश' न इसका अथ एव आग्नेय अस्त्र किया है। (हिन्दी अनुशीलन, वप 17, अक 1 2, पृ 49) जो अयुक्त है। वचनिका पृ 71)

'निहाव' के उपर्युक्त विवेचन के साथ असहमति प्रकट करते हुए श्री काशीरामजी शर्मा ने लिखा है हमने निहाव' को निहाई' (आवा) की जलती ज्वाला मानकर अथ किया 'प्रज्वलित होकर'। शम्भूसिहजी करते हैं— ध्वनि, घोप। हम वसा करते तो वे कह देते उसका वाचक तो गाजिया' इसी पक्ति म आ गया है ऐसे मामलो में उन्होने हमें सदा डाटा है। पहले से स 4 मे देख सकते हैं। पर शम्भूसिहजी डिंगल के अवतार हैं। उन्हें सब छूट है। मुझे तो 'निहाव' के दो अथ आते थे 1 ज्वाला और 2 प्रहार। आग दो ■ 90 में मैंने प्रहार अथ किया है। आश्चय है कि यहा शम्भूसिहजी मान गए हैं। जसी उनकी इच्छा। हमे ध्वनि' अथ ठीक नही लगता। (वचनिका का सम्पादन, पृ 56 57)

एक शब्द के अनेक अथ हो सकते है परन्तु निहाव का 'ध्वनि या 'घोप' वाला अथ मेरी समक्ष मे भी नही आता। वचनिका के दोनो—1

'नाळि निहाव' गाजिया नेडा' (39) तथा 2 'वागा वारारसतणा नाराजिया 'निहाव।' (90) में 'गाजिया' एव 'वागा' शब्द ध्वनि अथवा 'घोष' के लिए प्रयुक्त हुए हैं तो फिर निहाव की क्या आवश्यकता अवशिष्ट रह गई। श्री काशीरामजी शर्मा ने सत्य कहा है कि 'श्री शमुसिहजी मनोहर ने मेरे दूसर अर्थ 'प्रहार' को छद 90 के अर्थ करते समय स्वीकार कर लिया है। वचनिका पृ 253 पर निहाव = 1 चोट, प्रहार एव 2 ध्वनि, 'घोष' श्री शमुसिहजी ने स्वय स्वीकार किया है। निहाव' शब्द के अर्थ के बारे मे मेरा विनम्र अनुरोध है कि इसका तीसरा अर्थ 'आग्नेयास्त्र' भी स्वीकार करलें तो अर्थ सबधी विवाद सरलता से समाप्त हो जायेगा।

अन्य उदाहरण—

1 निहस्स बाणा सा बाद गाजियो निहाव ।

—प्रा रा गी, भा 1, पृ 128

2 धीघसते नीसाण निहाव ।

—वही, भाग 2 पृ 22

3 घर धज्जे गज्जे गमण वज्जे भेरि निहाव ।

—गीतमजरी, प 50

4 निवसड निहाय धरणि धमधमइ,
अबाल गयणगणि गमगमइ।

—सदयवत्सवीर प्रबध 646

5 वज्जि निहाय' निसान।

—पृथ्वीराजरासो, प 257

6 माळा झडत 'निहाव चल धुड चक्करा।

—प्रा रा गी, भा 4 पृ 60

7 झड 'निहाव पडियो झुलर।

—वही, पृ 69

विशेष— निहाव' शब्द किसी वाद्य के लिए तो प्रयुक्त नहीं हुआ है विचार करना आवश्यक है।

नेस

नेस' शब्द 'रास और रासान्वयी काव्य' के माध्यम से चर्चा मे आया है। यथा—

(अ) तदउ 'नेस' निवेसनगिणइ महदह नोक्षरण।

—रास और रासान्वयी काव्य, 66

(आ) नेस' निवेसि देसि घरि मंदिरि।

—वही, 96

प्रस्तुत कृति के सम्पादक द्वय (श्री दशरथजी शर्मा व श्री दशरथजी ओझा) ने 'नेस' का अर्थ=(स) नेष्ट (निषिद्ध) किया है जो प्रसगानुकूल नहीं है। नेस' शब्द बहु अर्थी है, उपयुक्त उद्धरणो मे यह 'घर' के अर्थ मे व्यवहृत हुआ है।

अन्य उदाहरण—

1 तद नदर 'नेस' बळभद्र न हुता।

—नागदमण, 75

2 नमो नदर नेस आज ओतरं अक्रमा।

—पीरदान लालस ग्रन्थावली, पृ 96

3 नेस' घर दिखणी पूरबधरा नाम।

—प्रा रा गी, भाग 2 पृ 65

4 नेस नीर चढावा, करेवा प्रथी नाम।

—वही, भा 2, पृ 126

पउळि

पउळि शब्द 'वीसळदेव रासो' के माध्यम से प्रकाश मे आया है। यथा—

पउळि पछिम तणो दीयउ मेल्हाण।

—वीसळदेव रासो, 85/2

प्रस्तुत 'रासो के सम्पादक डा तारकनाथ अग्रवाल ने 'पउलि' शब्द का अर्थ='पउलिय, पका हुआ, जला हुआ दुग्ध।' दिया है जो निरा भ्रात है।

पउळि' शब्द संस्कृत के प्रतोली' शब्द से व्युत्पन्न है। यथा— प्रतोलि>प्रोलि>पोरि>पउळि=पोल। यह शब्द प्रमुखद्वार के लिए प्रयुक्त होता रहा है। उपर्युक्त उद्धरण में भी 'पउळि' शब्द पोल=प्रमुखद्वार के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है।

अन्य उदाहरण—

1 पडियउ पइठउ छई 'पउळि'।

—बीसलदेव रासो 118/3

2 पछिम पउळि मेल्हा पडम्पार।

—वही, 128/9

3 पउळिया 'पउळि' उघाडि नइ।

—वही, 149/5

4 सदन सरोज बदन की सोभा ऊभी जोऊ पोळि।

—मीरांबाई की पदावली, पृ 62

परठणो

परठणो क्रियापद 'डिंगळ में वीर रस' के माध्यम से चर्चा में आया है। यथा—

नारि केलि फळ परठि दुज।

—डिंगळ मे वीर रस, 2/32

प्रस्तुत कृति के सम्पादक श्री मोतीलालजी मेनारिया ने 'परठि' का अर्थ देखकर दिया है, जो अयुक्त है।

परठणो राजस्थानी भाषा का बहु प्रचलित क्रियापद है। प्रसगानुसार इसके अनेक अर्थ होते हैं। परन्तु परठणो का प्रमुख अर्थ रखना भेजना छिड़कना होते हैं।

अन्य उदाहरण—

1 सुम घरि 'परठिय' (=भेजा)।

—डिंगळ म वीररस, 1/96

2 पहलो पग जवि 'परठ्यो' (=रखा)।

—माधवानळ कामकन्दळा 111

3 सास्ह पसतइ परठिया' (=रखे)।

—ढोला मारू रा दूहा, 336, 337

4 पश्चिम दिसि पूठ पूरव मुख 'परठित' (=किया, रखा)

—वेलि, 153

5 परठा नवा नवा 'परठीजइ' (=भेजे जाते हैं)

—महादेव पारवती री वेलि, 279

6 पोतो साथ परठियो (=भेजा), पूरबयर पतिसाह।

—वचनिका रा र म दा री पृ 6

7 पत्र परठिया (=भेजे) साहकार लिखिया विवर नवाब।

—राजरूपक, पृ 331

परप्पण

'परप्पण' शब्द 'राजरूपक' के माध्यम से प्रकाश मे आया है। यथा—

कुणवाद छळ राठौड़ कुळ, आद परप्पण आपणे।

—राजरूपक, पृ 93

प्रस्तुत कृति के सम्पादक प श्री रामकरणजी आसोपा ने इस 'परप्पण' शब्द का हिन्दी अर्थ 'सामर्थ्य दिया है, जो प्रसगानुकूल नही है। 'परप्पण' का वास्तविक हिन्दी अर्थ 'सम्बन्ध' होता है। बोलचाल की भाषा में भी 'इणारे अर आपा र आदू 'पडप्पण' है' जसे प्रयोग प्रचलित हैं।

रूपभेद —पडपण

परिगहि

परिगहि शब्द रास और रासान्वयी काव्य' के माध्यम स चर्चा म आया है। यथा—

थावीउ ए मरहर्नरिद सिउ 'परगहि अवक्षापुरी ए।

—रास और रासान्वयी काव्य, 198

प्रस्तुत कृति के सपादक-द्वय (श्री दशरथजी शर्मा व श्री दशरथजी ओझा) ने 'परगहि' का अर्थ 'भीड' दिया है जो केवल अनुमानाश्रित है। 'परगहि' का वास्तविक अर्थ कुटुम्ब कबीला, पारिवारिकजन होता है तथा उपर्युक्त उद्धरण मे इसी अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

अन्य उदाहरण—

1 आपतणो 'परिगह' ले आयउ,
   तरुणापो ऋतुराज तिणि।

—वेलि क्रीकृष्ण रुक्मिणी री, 19

2 सइ राजा 'परिग्गहु' कम्सारि।

—जिणदत्तचरित, 350

3 'परिग्गहु' सह सम्तीहि बसत।

—वही 460

परिघळ

'परिघळ' शब्द भी 'ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

सहसे लाखे साटविसु 'परिघळ' आणा वेस।
घर बइठा ही प्रीतमा पटोळ पहिरेस।

—ढोला मारू रा दूहा 233

प्रस्तुत कृति के सम्पादक त्रय (ठा रामसिहजी पारीकजी व स्वामीजी) ने उपर्युक्त उद्धरण के पूर्वांश का हिन्दी अर्थ 'हजारो लाखो के पहनने के वस्त्र मैं इकट्ठे हो सका लूगा' (पृ 73) किया है तथा टिप्पणी (पृ 491) म साटविसु और 'परिघळ' शब्दों के अर्थ को सदिग्ध बताया है।

डा माता प्रसादजी गुप्त ने उक्त सदेह का लाभ उठाते हुए लिखा है वस्तुत 'साटविसु' शब्द एक नहीं है। 'साट' तथा विसु दो शब्द हैं। 'साट' है>शाट—वस्त्र। 'विसु' है >वृष— सर्वोत्कृष्ट (मो वि) और

'परिघळ' मेरी समझ मे है <'परिगृहितृ'—पति। अत चरण का अर्थ होना चाहिए—सहस्रो और लाखो उत्तमोत्तम वस्त्र हे पति ! मैं (स्वय) मगा लूगी (ना प्र प, वर्ष 69 अं 1)

दोहे के पूर्वार्द्ध का डा गुप्त जी का अर्थ देखा आपने। इसे कहते हैं द्रविड प्राणायाम ! चाहे प्रसग हो अथवा नही वे तो 'तेलो रे तेलो तेरे सिरपर माचा ! परन्तु तुक बठी नही ? कोई बात नही बोझा ! मारा तो मरसी क।'

'परिघळ' शब्द का व्यवहार 'अत्यधिक, बहुत' के अर्थ मे हुआ है। आज की साधारण बोल चाल मे भी यह शब्द इसी अर्थ मे व्यवहृत होता है। सन्देह की कतई गुजाईश नहीं है।

अन्य उदाहरण—

1 पुष्कर खड पाणी 'प्रघळ ।

—ढोला मारू रा दूहा, (परिशिष्ट)

2 परघळ' लच्छ मिळ आवि।

—अकबर प्रतिबोध रास, 20

पवाडो

पवाडइ' शब्द का प्रयोग 'रास और रासा न्वयी काव्य' के माध्यम से प्रकाश मे आया है। यथा—

जुगुटि चडिसितु चडिउ पवाडइ'

रास और रासान्वयी काव्य 110

प्रस्तुत कृति के सम्पादक द्वय (डा दशरथ शर्मा व डा दशरथ ओझा) ने पवाडइ का अर्थ गिरा देता है' किया है, जो भ्रात है।

'पवाडा' शब्द राजस्थानी साहित्य का बहु प्रयुक्त शब्द है। रात दिन की बात चाल की भाषा मे भी इसका व्यवहार पाया जाता है। इस शब्द की व्युत्पत्ति आदि को लेकर विभिन्न विद्वानो ने समय समय पर लेख लिखे हैं। प्रत्येक शब्द को सस्कृत भाषा से व्युत्पन्न करना आवश्यक नहीं है, यदि सरलता के साथ व्युत्पत्ति का मेल बैठ सकता हो, तब तो ठीक है, अन्यथा

केवल ध्वनिसाम्य के आधार पर द्रविड प्राणायाम करवाने में कोई लाभ नहीं है। 'पवाडा' शब्द 'युद्धचरित' 'अनुकरणीयमार्ग', 'श्रेष्ठ कार्य' के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

अन्य उदाहरण—

1 'पवाडो' पनगा सिरै, जदुपति कीधो जाय।

—नागदमण,1

2 असल पवाडा' सुज तणा अति।

—पीरदान लालस ग्रन्थावली, पृ 19

3 कीरततणा प्रवाडा' कारण पांचन्न मूळ अमूळ कियो।

—प्रा रा गी, भा 1, पृ 8

4 कान्ह 'प्रवाडा' करमत कळि।

—गात मजरी पृ 10

5 और भी नरसिंघ हाम, प्रवाडा' जपजाहर किया।

—रघुवर जस प्रकास, पृ 86

6 कहू 'पवाडा केतला ऊठा एहवा लख।

—माधवानळ कामकदळा पृ 5

7 निजडी पाण खाटिया भेध,
बडा प्रवाडा जगत वदीत।

—प्रा रा गी भा 7, पृ 128

8 प्रवाडा' म्हाट दरबार न आयो सुपह।

—वही भा 1 पृ 74

9 पुण जित कवि एक प्रवाडो
उस 'प्रवाडा' कर बनि।

—वही, भा 3, पृ 37

10 सुजाव अडमी मुजा 'प्रवाडा दिनेस सुण।

—वही, भा 3, पृ 98

11 प्रताप 'प्रवाडा' घो गरज्ज मेन्पाट।

—वही भा 1 पृ 164

12 गयाहै प्रवाडा' जसो घारघा गुमर ।

—वही भा 2 पृ 107

13 पुराणा मवा कीधां तणां 'प्रवाडा ।

—गीत मजरी पृ 65

14 करण मयो प्रवाडा बांधिया कध ।

—वही पृ 65

15 पत्ता सिर प्रवाडा कीघतै एहडा ।

—प्रा रा गी भा 7 पृ 70

पसाव

पसाव शब्द 'पृथ्वीराज रासो' के माध्यम से प्रकाश मे आया है। यथा—

अनवर 'पसाव राज राजेम ।

` 9/12

पातरिया

'पातरिया शब्द 'वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री के माध्यम से चर्चा में आया है। यथा—

वेलि द्वाला, 32 33।

वेलि के नवीन टीकाकार श्री आनन्द प्रसाद जी दीक्षित ने 'पातरिया तथा 'पातरि शब्दों का हिन्दी अर्थ 'बुद्धिभ्रष्ट होना, मूर्खता मत कर दिया है, जो प्रसंगानुकूल नहीं है।

पातरणो' शब्द का व्यवहार साहित्य में तो उपलब्ध होता ही है परन्तु वर्तमान कालिक बोल चाल की भाषा मे भी इस शब्द का व्यवहार होता है—'भाई ! हू तो पातरग्यो 'म्हार पातरी पडग्यो 'मारग पातरग्यो तद मोडो आईज्यो, 'म्हन तो तू हीज पातरियोडो दीस है इत्यादि। इन सभी प्रयोगों से 'पातरणो' का हिन्दी अर्थ भूलना भ्रमित होना सिद्ध होता है।

अन्य उदाहरण—

1 पातरिया, पातरि—चूक छ, भूलियो।

—वेलि की दूढाडी टीका।

2 राज हियइ मा पातरउ आयण यउ औराह।

—ढोला मारू रा दूहा पृ 8

3 राण सेसवसुधा मत्र राव्वण

रागिन 'पातरियो, अहिराउ।

—प्रा रा गी भा 3 पृ 63

4 सुजन मेरा बोलडा मत पातरज्यो' कोय।

—ढोला मारू रा दूहा पृ 446

5 म्हे पातरिया वीर, तब न थायइ बीजग।

—एक हस्तलिखित पत्र

प्रांण

'प्रांण शब्द 'ढोला मारू रा दूहा के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

का प्री रोंगों प्राण करि, काइ अचती होंण ।

—ढोला मारू रा दूहा, 627

प्रस्तुत कृति के सम्पादक त्रय (ठा रामसिहजी, पारीकजी व स्वामी जी) न 'रागाप्राणकरि' का हिन्दी अथ या तो इनका अपने प्राणा का मोह है' किया है जो भ्रात है।

उपयुक्त उद्धरण में प्राण शब्द 'शक्ति, ताकत, जोर अथ म प्रयुक्त हुआ है। अर्थात् 'या तो हे प्रियतम ! अपनी राजो से ताकत लगाओ, अन्यथा कोई अनिश्चय हानि की सभावना है।

म हिन्दी शब्द सागर में भी 'प्राण शब्द का 5 अथ 'बल शक्ति' दिया है। (पृ 675)

पिडि

'पिडि' शब्द 'वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री' (द्वाला, 125) में प्रयुक्त हुआ है। इसके सम्पादक ठा रामसिहजी व स्वामी जी न 'पिडि' शब्द का अथ पेड़ियों पर किया है तथा श्री दीक्षितजी ने भी इसी को आधार मानकर अपने हिन्दी भावाथ में 'पिड, तना बताया है। जो प्रसगानुकूल नहीं है। 'पिडि' अथवा पिड' राजस्थानी भाषा के वीर साहित्य का एक बहु प्रचलित शब्द है, जिसका तात्पय होता है 'युद्ध अथवा युद्ध भूमि ।

पीन

'पीन शब्द राजस्थानी नीति दूहा' के माध्यम से चर्चा मे आया है। यथा—

कन्या देहु न अष्ट को दीन हीन शठ पीन ।

—राजस्थानी नीति दूहा, 393

प्रस्तुत कृति के सम्पादक श्री मोहनलालजी पुरोहित ने पीन का अथ दारू पीने वाला किया है जो अनुमानाश्रित है। वस्तुत 'पीन का अथ स्थूल काय', मोटा' लिया जाना चाहिए।

पातरिया

'पातरिया' शब्द 'वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री' के माध्यम से चर्चा में आया है। यथा—

वेलि, द्वाला, 32 33।

वेलि के नवीन टीकाकार श्री आनन्द प्रसाद जी दीक्षित ने 'पातरिया' तथा 'पातरि' शब्दों का हिन्दी अर्थ 'बुद्धिभ्रष्ट होना, भूलना मत कर' किया है जो प्रसगानुकूल नही है।

पातरणो शब्द का व्यवहार साहित्य में तो उपलब्ध होता ही है परन्तु वर्तमान मालिक बोल चाल की भाषा में भी इस शब्द का व्यवहार होता है— माई ! हू तो पातरग्यो' 'म्हार पातरो पड़ग्यो', 'मारण पातरग्या तद मोडो आईग्या', म्हूं तो तू हीज पातरियोडो दीस है इत्यादि। इन सभी प्रयोगों से 'पातरणो' का हिन्दी अर्थ भूलना, भ्रमित होना' सिद्ध होता है।

अन्य उदाहरण—

1 पातरिया पातरि—चूक छ, भूमिका।

—वलि की दूढाड़ी टीका।

2 राज हिवइ मां पातरउ आपण घउ ओराह।

—ढोला मारू रा दूहा पृ 8

3 राण सेसबसुधा सत्र रावण

रागिन 'पातरियो अहिराज।

—प्रा रा गी भा 3 पृ 63

4 दुजन केरा बोलडा मत 'पातरज्यो कोय।

—ढोला मारू रा दूहा, पृ 446

5 म्हे पातरिया वीर तब न थायइ बीजग।

—एक हस्तलिखित पत्र

प्रौंण

'प्रौंण' शब्द ढोला मारू रा दूहा के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

का प्री रोंगां प्रांण करि, काइ अचती हंणि।

—ढोला मारू रा दूहा 627

प्रस्तुत कृति के सम्पादक त्रय (ठा रामसिहजी, पारीकजी व स्वामी जी) ने 'रागांप्राणकरि' का हिन्दी अर्थ 'या तो इनको अपने प्राणो का मोह है' किया है, जो भ्रांत है।

उपयुक्त उद्धरण में प्राण' शब्द 'शक्ति ताक्त, जोर' अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। अर्थात् 'या तो हे प्रियतम! अपनी रानो से ताक्त लगाओ, अन्यथा कोई अचित्य हानि की समावना है।

स हिन्दी शब्द सागर म भी 'प्राण' शब्द का 5 अर्थ 'बल शक्ति' दिया है। (पृ 675)

पिढि

'पिढि' शब्द 'वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री (ढाला, 125) मे प्रयुक्त हुआ है। इसके सम्पादक ठा रामसिहजी व स्वामी जी ने 'पिढि' शब्द का अर्थ पेढियों पर किया है तथा श्री दीक्षितजी ने भी इसी को आधार मानकर अपने हिन्दी भावार्थ म 'पिढ, तना' बताया है। जो प्रसगानुकूल नही है। 'पिढि' अथवा पिढ' राजस्थानी भाषा के वीर साहित्य का एक बहु प्रचलित शब्द है जिसका तात्पर्य होता है 'युद्ध अथवा युद्ध भूमि'।

पीन

'पीन शब्द' 'राजस्थानी नीति दूहा' के माध्यम से चर्चा में आया है। यथा—

कन्या देहु न अष्ट को, दीन हीन शठ 'पीन'।

—राजस्थानी नीति दूहा, 393

प्रस्तुत कृति के सम्पादक श्री मोहनलालजी पुरोहित ने 'पीन' का अर्थ दारू पीने वाला' किया है जो अनुमानाश्रित है। वस्तुत 'पीन' का अर्थ स्थूल काय, मोटा लिया जाना चाहिए।

पुळै

पुळणो क्रियापद राजस्थानी की साहित्यिक भाषा एव बोलचाल की भाषा में समान रूप से प्रयुक्त होता है। प्रत्ययों के साथ इस शब्द के कई रूप सिद्ध होते हैं। परन्तु 'पुळणो' का हिन्दी अर्थ 'चलना' होता है। 'जुळने न पुळतो पूग कोनी।' जैसे प्रयोग रात दिन चलते हैं।

अन्य उदाहरण—

1 जेती अउमनमांहि, पजर जइ तेती 'पुळइ'।

—ढोला मारू रा दूहा, दू 171

2 साद न्दर प्रिय सुदूर है, 'पुळि-पुळि' थक्के पाव।

—वही, दू 385

3 पापपुरी कटक 'पुळ' अपळा।

—श्री पाबूजी पाधल रो छद,

4 सा सामळी पाळी 'पुळइ'

—सदयवत्सवीर प्रबध, प 163

5 पूजाराना पगि पडइ 'पुळिऊ' पूगळ पथ।

—माधवानळ कामकदळा, पृ 50

6 त्रिविध पवन पूठइ 'पुळइ' कुसुम कृपाण वसत।

—वही, पृ 5

7 नीचू जोतू नित 'पुळइ', जिहा देरासर ग्राम।

—वही पृ 41

8 यादवटवी राजा 'पळइ', सरत्नइ सीह सियाळ।

—वही, प 39

9 पाछइ जोई नहीं 'पळइ', सीह तणी आचार।

—वही प 132

पेखणो

पेखणो शब्द संस्कृत के 'प्रेक्षण' से व्युत्पन्न है और इसका अर्थ 'नाटक खेल' होता है। राजस्थानी साहित्य के साथ साथ यह शब्द हिन्दी साहित्य मे

भी बराबर व्यवहृत होता है। कई विद्वान इसे 'पेखणो' क्रियापद मानकर इसका अर्थ 'देखना' कर दिया करते हैं, जो भ्रांत है।

अन्य उदाहरण—

1 जब धारू घर पड़िय, राव 'पेखणो' समप्पा।

—हम्मीरायण, मालकवित्त 13

2 दयो हमीर 'पेखणो' तरण नच राय अगण।

—वही, खेमकवित्त, 11

3 नव इतिय वर रमणि ठामि ठामि 'पिखणय' सुंदर।

—कवि सारमूर्ति मुनि जिनपद्मसूरि पट्टाभिषेक रास, 19

4 कोठइ कोठइ हुवइ 'पेखणा'।

—कान्हडदे प्रबंध, पृ 134

5 ठामि ठामि मढि 'पेखणा'।

—वही, पृ 166

6 पचसबद हुइ 'पेखणा'रा।

—वही, पृ 135

पैला

'पैला' शब्द 'राजस्थानी नीति दूहा' के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

मन सू सगढ मार, 'पैला' सू झगड पछै।

—राजस्थानी नीति दूहा, 353

प्रस्तुत कृति के सम्पादक श्री मोहनलालजी पुरोहित ने 'पैला' का अर्थ 'दूसरे से' किया है, जो अनुमानाश्रित है। इसका वास्तविक अर्थ 'शत्रु', 'विपक्षी' होता है और इसी अर्थ में साहित्य में प्रयुक्त हुआ है।

अन्य उदाहरण—

1 पैला पाणइ पद्मतपण, दूणरी आहिज चाल।

—राजस्थानी नीति दूहा, 959

फारक

फारक शब्द भी 'रास और रासान्वयी काव्य' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

कोडि बहुत्तरि फरकइ फारक'।

—रास और रासान्वयी काव्य, 109

प्रस्तुत काव्य के संपादक द्वय श्री दशरथजी शर्मा व श्री दशरथजी ओझा ने फारक<स स्फारक<प्रा फारक्क=घोड़े हिंदी अर्थ दिया है, जो प्रसंगानुकूल नहीं है। इस सुप्रसिद्ध शब्द की व्युत्पत्ति के चक्कर में पड़कर संपादक भ्रमित हुए हैं। 'फारक' शब्द बहुअर्थी है। प्रसंगानुसार इसका हिन्दी अर्थ 'योद्धा, ध्वजा हल्का, छोटा' किया जा सकता है। उपर्युक्त उदाहरण में 'फारक' शब्द 'ध्वजा' के लिए प्रयुक्त हुआ है।

मिले जुले अर्थ वाले अन्य उदाहरण—

1 फारक' (=योद्धा) पायक तुरग ताय नवि कोई छड्ड।

—पचपाडवचरित रासु 740

2 वसिलउ पायक सफर फारक्क (=योद्धा) धणुधर।

—कमासवध, 1

3 सरीखा फारक (योद्धा) सोहे स्वामी।

—राउजतसीरो रासो

4 फुगराइ फू फू 'फारक (योद्धा) फौज करि फुरमाणियां।

—रणमल्ल छद, 1

5 दळ बादळ ताणिया दुबाहे, 'फारक' (=ध्वजा) ईसर तणा फरास।

—महादेव पारवती री वेलि, 119

6 फार फारक्कय (=योद्धा) हुक्क टामक्कवे।

—नागाजी रा रसावळा, 7

7 फारक (=ध्वजाए) फरक मरक फिर।

—पाबूजी धाधलरो छद, 37

8 दोघी पोळी फारक (=ध्वज) घल्लिया।

—कान्हड दे प्रबध, 17

9 हड मावध डाव, फारिक (योद्धा) फाव, वीरति बका झूझार।

—राजरूप रूपक बध, 67

फुड

'फुड' शब्द 'जिणदत्त चरित' के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

निसुणि सेठि वहउ 'फुड' तोहि।

—जिणदत्त चरित, 35

जिणदत्त चरित के सम्पादक द्वय (डा माताप्रसादजी गुप्त व श्री कस्तूरचन्द कासलीवाल) ने 'फुड' शब्द का हिन्दीअर्थ 'स्पष्ट' अर्थ किया है। परन्तु 'फुड' शब्द का व्यवहार 'सत्य' के पर्यायवाची रूप में हुआ है। 'स्पष्ट' और 'सत्य में अन्तर होता है। अत इस शब्द का अर्थ 'सत्य, सच' ही लेना चाहिए।

अन्य उदाहरण—

1 भणइ धीर 'फुड' वत कहि।

—जिणदत्त चरित, 221

2 'फुड' वयणु मई अखिउ एहु।

—वही, 382

3 महुमण ससउ 'फुड' अवरहु।

—वही, 525

4 देखि विसूरु रयउ फुड' एहु।

—वही 550

वउळाविया

वउळाविया' शब्द 'बीसलदेव रास' के माध्यम से चर्चा म आया है। यथा—

बारह मास 'वउळाविया' नार।

—बीसलदेव रास, 95/5

प्रस्तुत कृति के सम्पादक डा तारकनाथ अग्रवाल ने 'वउळाविया' शब्द का अर्थ 'बुलाया' किया है, जो प्रसगानुकूल नही है।

'वळावणो' राजस्थानी भाषा का बहुप्रचलित क्रियापद है। इसका प्रयोग 'विदाई देने, व्यतीत करने' के अर्थ में होता है। उपर्युक्त उद्धरण में भी वळाविया का अर्थ 'व्यतीत किये' अथवा 'बिताए' अर्थ में ही हुआ है। अर्थात्— नारि ने बारह महिने बिता दिए अथवा 'बारह महिनों को विदाई देदी'। इन दोनों का भाव एक ही है।

अन्य उदाहरण—

1 साधण प्रिय वळावण (=विदा करने) जाय।

—बीसळदेव रास, 69/2

2 'वळाया (=विदा किया) घण पगां लाग।

—वही, 69/5

3 पाछयो वळावी (=विदा करके) बाहुडयो,

—वही, 75/9

4 महल दुखि 'वळाविया (=बिताए) बारह मास।

—वही 96/2

5 सज्जणियां 'वळाइ (=विदा कर) कइ गवख चढी सहुवक।

—ढोलामारू रा दूहा, 372

रूपभेद वळाविया

बाहुडयउ

बाहुडयउ' शब्द बीसळदेव रासो' के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

पाछयो वळावी 'बाहुडयउ।

—बीसळदेव रासो, 75/9

प्रस्तुत 'रासो के सम्पादक डा तारकनाथ अग्रवाल ने बाहुडयउ' शब्द का हिन्दी अर्थ '=बाहुडइ, बाहुडिय लज्जित' दिया है, जो भ्रांत है।

बाहुडणो राजस्थानी का बहु प्रयुक्त क्रियापद है जिसका हिन्दी अर्थ लौटना' होता। उपर्युक्त उद्धरण में भी यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'पाछिया विदा कर के लौटा है।

अन्य उदाहरण—

1 नदीय वहइ प्रीय 'वाहुडइ'।

—बीसलदेव रास 75/3

2 रोवती 'बाउडी' चलियउ नाह।

—वही, 72/1

3 'बाउडी' गोरडी तू घरे जाय।

—वही, 110/3

4 ढोलो मजे न 'बाहुडइ', प्रीतम मोमन साल।

—ढोलामारू रा दूहा, 410

5 ढोलो गमउन 'बाहुडइ', सुया मनावण चल्ल।

—वही, 399

भावठि

'भावठि शब्द का प्रयोग अचलदास खीची री वचनिका के माध्यम से प्रकाश मे आया। यथा—

तउ बीस उपि विरोळि,
तइ बीसहपि विराळियइ।
'भावठि'भामइ तूतणइ,
हिज्यउ सू काई हिंगोळि॥

—वचनिका, पृ 36

वचनिका के प्रथम सपादक श्री दीनानाथ खत्री ने प्रस्तुत 'भावठि' श[illegible] का अर्थ बिना दिये ही इसे विचारणीय शब्द–सूची ज्यो का त्यो रख दिया। नवीन सस्करण के सपादक श्री भूपतिराम साकरिया ने अपनी गोल माल भाषा म इस शब्द का अर्थ दिया है– सारी इच्छाए'। उपर्युक्त उद्धृत पद्य के तीसरे पद्याश का हिंदी अर्थ इस प्रकार दिया है—'मेरी सारी इच्छाए आप पर न्योछावर हैं। पता नहीं इस अर्थ का आधार क्या है। [illegible] अर्थ होता है—भवकष्ट दुख सकट इत्यादि।

'वउळावणो राजस्थानी भाषा का बहुप्रचलित क्रियापद है। इसका प्रयोग 'विदाई देने, व्यतीत करने' के अर्थ में होता है। ऊपर्युक्त उद्धरण में भी बउळाविया का अर्थ व्यतीत किये अथवा 'बिताए' अर्थ में ही हुआ है। अर्थात्—'नारि ने बारह महिने बिता दिए' अथवा 'बारह महिनों को बिदाई देदी'। इन दोनों का भाव एक ही है।

अन्य उदाहरण—

1 सावण प्रिय बउळावण (=विदा करने) जाय।

—बीसलदेव रास, 69/2

2 'बउळाया (=विदा किया) घण घणां लाग।

—वही, 69/5

3 पाडधो बउळावी (=विदा करके) वाहुडघो

—वही, 75/9

4 महलउ दुखि बउळाविया (=बिताए) बारह मास।

—वही, 96/2

5 सज्जणियां 'बउळाइ (=विदा कर) कह, गउग चढी लहुवक।

—ढोलामारू रा दूहा, 372

रूपभेद बउळाविया

वाहुडघउ

वाहुडघउ' शब्द बीसळदेव रासो' के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

पाडधो वउळावी 'वाहुडघउ।

—बीसळदेव रासो, 75/9

प्रस्तुत 'रासो के सम्पादक डा तारकनाथ अग्रवाल ने वाहुडघउ' का हिन्दी अर्थ =वाहुडइ, वाहुडिय लज्जित' दिया है, जो भ्रांत है।

'वाहुड़णो राजस्थानी का बहु प्रयुक्त क्रियापद है जिसका हिन्दी अर्थ लौटना' होता। उपयुक्त उद्धरण में भी यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'पाडिया विदा कर के लौटा है।

अन्य उदाहरण—

1 नदीय वहइ प्रोय 'वाहुडइ' ।

—वीसलदेव रास 75/3

2 रोवती 'बाउही' चलियउ नाह ।

—वही, 72/1

3 'बाउही' गोरडी तू घरे जाय ।

—वही, 110/3

4 ढोलो अजे न 'वाहुडइ , प्रीतम मोमन साल ।

—ढोलामारू रा दूहा, 410

5 ढोलो गयउन 'वाहुडइ', सुया मनावण चल्ल ।

—वही, 399

भावठि

भावठि' शब्द का प्रयोग अचळदास खीची री वचनिका के माध्यम से प्रकाश मे आया । यथा—

तउ वीस उथि मिरोळि,
तइ बीसहुयि विराळियइ ।
'भावठि'मामइ तूतणइ,
हिउयउ सू काई हिगोळि ।।

—वचनिका, पृ 36

वचनिका के प्रथम सपादक श्री दीनानाथ खत्री ने प्रस्तुत 'भावठि' शब्द का अथ बिना दिये ही इसे विचारणीय शब्द–सूची ज्यो का त्या रख दिया । नवीन सस्करण के सपादक श्री भूपतिराम साकरिया ने अपनी गोल-माल भाषा म इस शब्द का अथ दिया है— सारी इच्छाए' । उपयुक्त उद्धत पद्य के तीसरे पद्यांश का हिन्दी अथ इस प्रकार दिया है—'मेरी सारी इच्छाए आप पर न्योछावर हैं ।' पता नहीं इस अथ का आधार क्या है । ~~[illegible]~~ अथ होता है—भवकष्ट दुख, सकट इत्यादि ।

अन्य उदाहरण—

1 मसतक सुदर तिलक धरइ, दरसण दीठो 'मावठि' भांजइ ।

—ऐतिहासिक जन काव्य सग्रह 159

2 घरि घरि मगल होयइ नवनवारे
मावइ मावठि' सगळी भाजरे ।

—वही पृ 246

3 काय तारा तो धमळ कळोयर,
'मावठ' भजण लील सुचाल ।

प्रस्तावना हरिरस, पृ 8

भीरिकजि

भीरि शब्द 'वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री' के माध्यम से चर्चा मे आया है यथा—

भीरि कजि

—वेलि 216

वेलि के सम्पादक श्री दीक्षितजी ने इस 'भीर कजि' शब्द का हिन्दी अर्थ कष्ट पडना, काय किया है पता नही इन्होने यह अर्थ से किस आधार पर किया है ।

'भीर' शब्द 'वचनिका राठोड रतन महेसदासोतरी' मे भी आया है— करण 'भीर' भारथकरन भीर मिल कर भीर—इस पद्याश मे आये हुये 'भीर' शब्द को इसके सपादक श्री काशीरामजी शर्मा ने भिड धातु से बना बताया है । यथा—

अब लीजिए 'भीर' या 'भीड' का अर्थ । यह लडना भिडना वाली 'भिड' धातु से बना है अत अर्थ है युद्ध । यो 'करणभीर' का अर्थ है 'युद्ध करने । 'भीड' का अर्थ सेना' भी होता है क्योकि यह भिडती है । इसे फारसी वाले 'वहीर' लिखते हैं क्यो कि उनके यहा लिपि म न 'भ' होता है और न 'ड' । वह तो हमी पचिकोर्य वहीर' में चलती सेना का वर्णन । यहा हमने 'वहीर' का अर्थ 'भीड इसलिए लिखा है कि 'भीड' का वाच्यार्थ

सेना ही है और 'बहीर' शब्द से उसका संबंध दिखाना हमें अभीष्ट था 'भीड' का जन समूह वाला अर्थ तो लाक्षणिक है। वस 'सेना' का भी लाक्षणिक प्रयोग 'अधिक जन समूह' के अर्थ मे होता है। किसी के साथ बहुत से लोग आ जाएँ तो लोग कहते हैं 'क्यो सेना ले आए हो।' अब प्रश्न है शर्मासिहजी के अर्थ 'भीर=सहायता' का उन्हें 'भीड बटाना' जैसे प्रयोग से भ्रम हुआ है। पर वहा 'भीड' का अर्थ है 'संकट'। युद्ध भी एक संकट होता है यो 'भीड बटाना' का अर्थ है 'संकट का एक हिस्सा अपने ऊपर झेलना'। 'संकट वाले अर्थ का एक और प्रयोग देखिए—

'जब जब भीर परी संतन प।

वचनिका का संपादन, पृ 45

अर्थ के लिए अनर्थ की सृष्टि कैसे की जाती है, श्री काशीरामजी शर्मा द्वारा किए गए विवेचन से सुस्पष्ट है। विद्वान शर्मा ने 'भीर' और 'भीड' को एक ही मान लिया है क्योंकि 'रलयोड' सूत्र मे इनका पूर्ण विश्वास है, परन्तु सभी धान बाईस पसेरी नहीं बिकता। हिन्दी की बोलियो पर शर्मा-सिद्धान्त लागू हो सकता है, परन्तु राजस्थानी हिन्दी की बोली नही है। यह एक स्वतंत्र भाषा है। राजस्थानी ग्रन्थो के संपादको को यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए।

'भीर या भीरि' शब्द का अर्थ 'सहायता' ही होता है। भीड' शब्द भिन्न है। वेलि के संस्कृत टीकाकार ने— सहायत्व समागत '— सुबोध मंजरी, 'सहाय मागिवा कि काजि –ढूढाडी टीका 'भीरड आया –चतमाली व नारायण वल्ली टीका म 'सहायता' अर्थ को ही स्वीकार किया है। और आज भी यही अर्थ प्रचलन में है।

अन्य उदाहरण—

1 तू भोमि भरधरी 'भीर भगत री।

—पीरदान ग्रन्थावली, पृ 21

2 माइया री वेगि करी भीर।

—वही पृ 90

रूपभेद—'भीरू'=सहायक।

उदाहरण=कहे कान्ह कीजिये 'भीरू विभागै।

—नागदमण, 10

भुजाई

'भुज' शब्द का प्रयोग 'पृथ्वीराज रासो' में हुआ है। यथा—दिन एव महिप 'भूज' मय।

—पृथ्वीराजरासो, 11/122

रासो के सम्पादक डा वी पी शर्मा ने 'भूज' का अर्थ 'भूनता है' किया है, जो प्रसगानुकूल नहीं है।

'भुजाई' शब्द भोजन, खाना अर्थ में प्रयुक्त होता है। उपर्युक्त उद्धरण में भी भुज का अर्थ 'खाने' में होता है।

अन्य उदाहरण—

1 करि भुजाई चाढि कडाला।

—वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी री, पृ 28

2 अति ऊजळा सधरांदही, भजाई हुलहीय सही।

—कान्हड़ दे प्रबंध,

भुगति-भगति

भुगति' शब्द 'वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

सेवते नवइ प्रति नवि सवे सुख,
जग चा मिसि वासि जगति।
रुखमिणी रमण तणाजु सरद रितु
'भुगति' रासि निस दिन भगति॥

—वेलि, द्वाला 215

वेलि के टीकाकार श्री दीक्षितजी ने 'भुगति' का हिन्दी अर्थ 'विषयोप भोग' दिया है, जिससे कवि वर्णित भाव स्पष्ट नहीं होता है।

भुगति अथवा भगति शब्द राजस्थानी काव्यो में प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं। भुगति' का तात्पर्य होता है 'भोजन छाजन द्वारा सत्कृत करना'। उपर्युक्त उद्धरण में यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

अन्य उदाहरण—

1 'नवनव पक्वान सुगध द्रव्यादि भिवस्त्रेश्च ।'

—सुबोध मजरी टीका

2 'नवा नवा पक्वान लीए सुगध द्रव्य वस्त्रे करी ।

—वनमाली वल्ली बा बो (अप्रकाशित)

3 करइ 'भगति राजान कृसन ची ।

—वेलि, 148

4 भोजन 'भगति करइ तिण वार ।

—बीसलदेव रास, 14

5 भोज 'भगति' जुगति जूजूइ ।

—सदयवत्सवीर प्रबध, 501

6 पूगळ 'भगता नवी नवी ।

—ढोलामारू रा दूहा, दूहा 594

7 ढोलो कुमर पधारिया 'भगत करो बहुमत ।

—वही दूहा 245

8 कासू 'भगत' करेम ।

—वही, दूहा 246

9 'भगती' करी प्रधानह तणी ।

—वही, दूहा 223

10 भीमसेन 'भगतांकिया' नळरायह प्रधान ।

—वही (परिशिष्ट)

11 'भगति' घणी महइ बहु भाय ।

—वही, (परिशिष्ट)

12 जामजाम ताइ 'भगत जूजूई ।

—महादेव पारवती री वेलि, 254

भैभीत

भभीत' शब्द को देखकर अनेक स्थानों पर इसका अर्थ 'भय से भीत अर्थात् डरा हुआ किया गया है जो सगत नहीं है। राजस्थानी भाषा के

काव्यो मे इस शब्द का प्रयोग —'डरावने' अर्थात् 'भयभीतकारी' अर्थ किया जाता है और यही अर्थ परंपरानुमोदित है।

अन्य उदाहरण—

1 भूप भयो 'भैभीत' मडोवर र माळियँ।

—एक प्रसिद्ध दोहा

2 भाखरहर 'भमीत सदा मुहरी सिरदारी।

—वि‍ है रासौ पृ 40

3 भूरो मह 'भमीत डोहै फौजां आडबर।

—वही, पृ 160

4 'भमीत असाया अद्र अगा आसमान।

—प्रा रा गी, भा 4 पृ 19

महिराण

'महिराण' शब्द 'ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम से चर्चा का विषय बना। यथा—

मन सीचाणउ जइ हुवइ, पौली हुवइ त प्रीण।
जाइ मिली जइ सजणाँ, डोही जइ 'महिराण ॥

—ढोला मारू रा दूहा 211

ढोला मारू के सपादक त्रय (ठा श्री रामसिंहजी श्री सूर्यकरणजी पारीक व श्री स्वामीजी) ने टिप्पणी मे इस शब्द की व्युत्पत्ति 'महार्णव' से बताई है जो सगत है। परन्तु श्री माताप्रसाद‍ गुप्त ने इस शब्द पर सशोधन प्रस्तुत करते हुए इसे यह रण्ण है <प्रा रण्ण, स अरण्य। (ना प्र पत्रिका वर्ष 15 अक 1) बताते हुए इसे 'वन सिद्ध किया है जो समीचीन नहीं है। राजस्थानी एव गुजराती दोना भाषाओ म 'महिराण का तात्पर्य समुद्र ही लिया जाता है तथा यह बहु प्रयुक्त शब्द है।

अन्य उदाहरण—

1 महृद नरा मनरा 'महिराण।

—रघुवर जसप्रकास, पृ 239

2 मनरा 'महराण' समापण मोजा कायण दीना तरणा कुरद ।

—रघुनाथ रूपक गीता रो, पृ 10

3 अण मिलणू मोहुव एमतो, मिटसो किम मोजा 'महराण' ।

—बांकीदास ग्रन्थावली, भा ३, पृ 107

4 ताखे अनेकां दया 'महराण' तस,

गिणा की वहम प्रयाण गाव ।

—रघुनाथ रूपक गीता रो

मातौ

'मातो शब्द' का रूप भेद 'मातै' शब्द 'वचनिका राठौड रतनसिंघजी महेसदासोतरी' के द्वारा चर्चा मे आया है । यथा—

अंकणि हुणे अनेक, विसनावत 'मात' कलहि ।
मरण तण दिन मारक बोटळ कियो विसखि ॥121॥

—वचनिका, पृ 299

वचनिका के सम्पादक श्री शम्भुसिंहजी मनोहर ने 'मातै कलहि' का हिन्दी अर्थ किया है—'=युद्ध छिड़ने या ठनने पर'। 'मातणो' क्रिया प्राचीन डिंगळ ग्रन्थों में युद्ध ठनन या छिड़ने के अर्थ म बहुश प्रयुक्त हुई है। यथा— 1 'दिल्ली मातो दूद दमगळ' (राजरूप रूपक ग्रथ, पृ 143) 2 'महा अस्टमी भारत जुध मातत थक त्यां दूसरी अस्टमी आइ समाप्ती हुयी'। (अचळदास खीचीरी वचनिका पृ 24), 3 'धाय सारा हुवे सेन हिंदू घणा, मूम उपकण्ठ सगराम मातो' (प्रा रा गी , भा 3, पृ 24)

तृतीय उद्धरण म प्राचीन राजस्थानी गीत (भा 3) के सम्पादक कविराव मोहनसिंह ने 'सगरांम मातो' का अर्थ 'युद्ध में मतवाला हो गया' कर दिया, जो भ्रान्त है। वस्तुत बनास नदी यहा अपने पानी का रंग लाल हो जाने के कारण बताती हुई गंगा यमुना से कहती है कि मेरे समीप ही यहां युद्ध छिड़ा था'। इसी भांति, दयालदासरी ख्यात मे आये 'जुद्ध जमराण घमसाण मातौ जठ' म 'घमसाण मातो' का अर्थ विद्वद्वर डा दशरथ शर्मा ने 'गहरा' किया है (दयाल दासरी ख्यात भा 2 पृ 132) जबकि 'घमसाण मातौ जठ' का अर्थ यहां 'घमासान युद्ध छिड़ा था' किया जाना चाहिए।

काव्यो मे इस शब्द का प्रयोग —'डरावने अर्थात् 'भयभीतकारी' अर्थ किया जाता है और यही अर्थ परपरानुमोदित है।

अ य उदाहरण—

1 भूप भयो 'भमीत' मडोवर रै माळिय ।

—एक प्रसिद्ध दोहा

2 भाखरहर 'भैमीत' सदा मुहरी सिरदारी ।

—वि है रासौ पृ 40

3 भूरो मड 'भेमीत डोहे फौजां आडबर ।

—वही, पृ 160

4 'भमीत असाधा अद्र अगा आसमान ।

—प्रा रा शी , भा 4 पृ 19

महिराण

'महिराण श" 'ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम स चर्चा का विषय बना। यथा—

मन सीधाणउ जइ हुवइ पाँवाँ हुवइ त प्रांण ।
जाइ मिलौ जइ सजणाँ, डोहौ जइ 'महिराण ॥

—ढोला मारू रा दूहा 211

ढोला मारू के सपादक त्रय (ठा श्री रामसिहजी श्री सूयकरणजी पारीक व श्री स्वामीजी) ने टिप्पणी मे इस शब्द की व्युत्पत्ति 'महार्णव से बताई है जो सगत है। पर तु श्री माताप्रसादजी गुप्त ने इस श" पर सशोधन प्रस्तुत करते हुए इसे ' यह रण्ण है <प्रा रण्ण, स अरण्य। (ना प्र पत्रिका, वष 15 अक 1) बताते हुए इसे 'वन सिद्ध किया है जो समीचीन नहीं है। राजस्थानी एव गुजराती दोनो भाषाओ मे 'महिराण' का तात्पय 'समुद्र ही लिया जाता है तथा यह बहु प्रयुक्त शब्द है।

अ य उदाहण—

1 महद नरा मनरा 'महिराण' ।

—रघुवर जसप्रकास पृ 239

2 मनरा 'महराण समापण मोजां, कायण दीना तरणा कुरद ।
—रघुनाथ रूपक गीता रो, पृ 19

3 क्षण मिलणू मोहुव एमतो, मिटसी किम मोजा 'महराण' ।
—बाकीदास ग्र थावली, भा ३, पृ 107

4 ताखे अनेका दया 'महराण' तस,
गिणा की वडम प्रयाण गाव ।
—रघुनाथ रूपक गीता रो

मातौ

'मातौ' शब्द का रूप भेद 'मात' शब्द 'वचनिका राठोड रतनसिंघजी महेसदासोतरी' के द्वारा चर्चा मे आया है । यथा—

अेकणि हुणे अनेक, विसनावत 'मात कलहि ।
मरण तण दिन मारक, वीठळ कियो विसेखि ॥121॥
—वचनिका, पृ 299

वचनिका के सम्पादक श्री शम्भुसिंहजी मनोहर ने मात कलहि' का हिन्दी अर्थ किया है—'=युद्ध छिड़ने या ठनने पर'। 'मातणो' क्रिया प्राचीन डिंगळ काव्यों म युद्ध ठनन या छिड़ने के अर्थ मे बहुश प्रयुक्त हुई है। यथा— 1 'भिल्ली मातौ दुद दमगळ (गजगुण रूपक बध, पृ 143) 2 'महा अस्टमी भारत जुध मातउ थउ, त्या दूसरी अस्टमी श्राद्ध सप्राप्ती हुयी'। (अचळदास खीचीरी वचनिका पृ 24), 3 थाय सारा हुवे खेद हिंदू घणा, मूम उपकण्ट सगराम मातो' (प्रा रा गी, भा 3, पृ 24)

तृतीय उद्धरण मे 'प्राचीन राजस्थानी गीत (भा 3) के सम्पादक कविराव मोहनसिंह ने सगराम मातो' का अर्थ 'युद्ध मे मतवाला हो गया' कर दिया, जो भ्रान्त है । वस्तुत बनास नदी यहा अपने पानी का रग लाल हो जाने क कारण बताती हुई गगा यमुना से कहती है कि मेरे समीप ही यहा युद्ध छिड़ा था । इसी भाँति दयालदासरी ख्यात म आये 'श्रुद्ध जमराण घमसाण माता जठ मे घमसाण मातो का अर्थ विद्वद्वर डा दशरथ शर्मा ने 'गहरा किया है (दयाल दासरी ख्यात, भा 2 पृ 132) जबकि 'घमसाण मातौ जठ' का अर्थ जहा 'घमासान युद्ध छिड़ा था' किया जाना चाहिए ।

उपयुक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि 'मात कलह' का अर्थ 'युद्ध छिडने पर' ही किया जाना चाहिए। श्री काशीराम शर्मा ने इसका अर्थ 'युद्धमत्त' किया है, जो हमारे विचार से अयुक्त है। यो शाब्दिक दृष्टि से चाहे 'मात कलहि' का अर्थ 'कलह में मत्त' या रणोन्मत्त कर लिया जाए, परन्तु प्राचीन काव्यो में अर्थ निर्णय का आधार मात्र व्युत्पत्ति को न बना कर शब्द के तत्कालीन विनिष्टार्थक प्रयोग को ही बनाना चाहिए, अन्यथा हम भ्रान्ति से ग्रस्त होकर कवि के उद्दिष्ट मूल भाव तक नही पहुँच सकेंगे। (वचनिका पृ 299 300)

'मातै' के बारे म इतनी चर्चा होने के उपरांत भी श्री काशीरामजी शर्मा सतुष्ट नही हो पाये। वे लिखते हैं— दो न 121 मे एक चरण है—'किसनावत मात कलहि। मैंने इसका अर्थ युद्ध मे मत्त किसनावत किया था। शम्भुसिहजी को उसकी युद्धोन्मत्तता, जो वीरों का गुण है नही सुहाई और अर्थ किया—युद्ध छिडने पर किसनावत। प्रमाण म 'मात' के उदाहरण नही ढूढ पाये तो 'मातो' भूतकालीन क्रियारूप ढूढ लाये दिल्ली मातो दूद यहा भी अर्थ युद्ध के आरम्भ होने का नही विकट रूप से होने का है। जिसे मारवाडी में माचना' और हिंदी म 'मचना' कहते हैं उसी को डिगळ वाले 'मातना' कहते थे। युद्ध मचना खलबली मचना, भगदड मचना आदि में जो 'मचम' से व्युत्पन्न मचना है वही युद्ध का 'माचना' या 'मातना' होता है। पर प्रस्तुत प्रसग में तो पाठ है 'मात कलहि अर्थात् युद्धमत्त'। (वचनिका का सपादन 88)

श्री काशीरामजी शर्मा ने पचो का हुक्म सिर माथे पर पनाला तो यही गिरेगा। कहावत को चरितार्थ किया है। मात अथवा 'मातो' को 'माचना' अथवा 'मातना' बताते हुए अततोगत्वा वही पूर्व प्रयुक्त 'मत्त' ले आये। यद्यपि 'मातणो' क्रिया का 'मचना' अर्थ ठीक है परन्तु प्रसगानुसार इससे मिलते जुलते अर्थों पर विचार किया जा सकता है।

अन्य उदाहरण—

1 अनत अनड सिसुपाळ अउझडी
भड 'मातउ' मडियउ भड।

—वेलि, द्वाला 121

2 काळी नाग न युद्ध मातो क्रिसन।

—नागदमण, छ 108

माम

'माम शब्द 'रास और रासान्वयी काव्य' के माध्यम से चर्चा का विषय बना। यथा—

काहि विलब कुण कारण कीजइ,
'माम' मनी गमिवार वळी जई।
—रास और रासान्वयी काव्य—1

'माम' शब्द का सम्पादकों ने हिन्दी अर्थ > स माम, ममता' दिया है, जो प्रसगानुकूल नहीं है।

माम' शब्द का सही अर्थ 'मर्यादा, सीमा' है और अन्यत्र भी इसी अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

अन्य उदाहरण—

1 जाणत चन्द्र न गोती हुणइ 'माम' माहरी हिव कुण गिणई।
—रास और रासान्वयी काव्य—पृ 188

2 जुध फरस कर घरमा माम ।
—रघुवर जस प्रकास, पृ 244

3 कृति दुगाम रिणकाम, नूर मुख 'माम' निरखै।
—राजरूपक, पृ 529

4 वयण विधि वात न काइवळी,
टळी मेंघ सगपण माम' टळी।
—पाबू पाधल रा छद 6

5 महि प्रजाद राग्वइ माम'।
—महादेव पारवती री वेलि, 177

6 देस विदेस गमाडी माम'
—ढोलामारू, परि पृ 272

7 राज मनेरइ एहवी माम ।
—कान्हडदे प्रबध, पृ 173

1 थालियो थाँव ओरग सरिस बाजते।
नळ हो 'मुरडते' आर वाळियो ॥ —गजगुण रुपक बध 289

श्री सीतारामजी लालस ने यहाँ मुरडने' का अथ 'नोध करने पर' या क्रुद्ध होने पर' किया है। इसके प्रयोग से सम्बद्ध मतान्तर पीरदान लालस के कवित्त की दो पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

तू करै बेल ईसर तणी, तू मुरडै महमायना।

—पीरदान लालस ग्रथावली, पृ 69

तथा—

तू मुरडे महमाय रुद्र मरतो रखवाळ।

—वही

हमारे विचार म वचनिका की विवेच्य पंक्ति म यह लौटने (या युद्ध से विमुख होने) के भाव का ही वाचक है, जसा कि उत्तराध मे इसका प्रयोग सूरज प्रकास के उद्धरणों से प्रमाणित है। (वचनिका, पृ 233 234)

उपर्युक्त विस्तृत विवेचन से भी 'जुडि मुरड वळियो जसो' का भाव स्पष्ट नही हो पाया है। श्री शम्भुसिंहजी मनोहर के दिये गये अथ के अनुसार 'जसवतसिंह लडते लडते युद्धविमुख होकर लौट गये।' परन्तु ता पय इससे भिन्न है। जसवतसिंहजी ने अपने मन से युद्धक्षेत्र छोडा नही था उन्हे जबरन छोडाया गया था। यही भाव उपर्युक्त पद्यांश म वर्णित है। अर्थात् लडते हुए जसवतसिंहजी को (अन्य लोगो ने) जबरन युद्ध क्षेत्र से लौटाया। कवि के पूर्वापर वणन से भी यही तात्पय निकलता है। जसवतसिंहजी तो अत तक युद्ध क्षेत्र छोडने के लिए तत्पर नहीं हुए थे।

विवेच्य पद्यांश म प्रयुक्त 'मुरड' श द 'जबरन बलात् जबरदस्ती, बलपूवक' अथ में प्रयुक्त हुआ है।

अन्य उदाहरण—

1 स्या माट तू गयु 'मरडी'।

—नळ दमयती रास, पृ 459

2 अटक स निर्यो हिंदवाण आयो उरड,
मुरड' पतसाह बीकाण मारू।

—गीत मजरी, पृ 53

3 आवियो दखिण हूं 'मुरड' जम अणो।

—वही, पृ 57

मेन

मेन शब्द 'वेलि श्री कृष्ण रुक्मिणी री' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

नयन कुमोदिणि दीप नासिका,
'मेन' केस राकेस मुख।

—वेलि, द्रा 22

वेलि के नवीन सम्पादक श्री दीक्षितजी ने 'मेन' शब्द का हिन्दी अर्थ 'मदन' दिया है, जिसकी 'केसो' के साथ संगति नहीं बैठती है।

संस्कृत की सुबोध मंजरी टीका में लिखा है— मेन केसेति=केशा रात्रि रूपा इत्यपि। मेन शब्देन चारण भाषाया भुजङ्ग सदृशा'। ढूंढाडी टीका में इसका अर्थ रात्रिरूप अंधकार किया है तथा इन्हीं अर्थों को आधार मानकर सम्पादकत्रय (ठा रामसिंहजी, पारीकजी व स्वामीजी) ने 'मेन' का हिन्दी अर्थ अंधकार किया है। मेन के ये सभी अर्थ ठीक है। केशों का उपमेय 'कृष्ण वर्ण का होना चाहिए अतः 'भुजंग' तथा 'अंधकार (रात्रिका) अर्थ ही ठीक हैं।

मेल्हाण

मेल्हाण शब्द बीसलदेव रासो के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

1 सर सामरि राजा कियो मेल्हाण। (17)
2 दव वधेरइ दीयउ 'मेल्हाण'। (19)
3 पडलि पश्चिम तणइ दीय मेल्हाण। (85/2)
4 चिहु घडिया सभो करिज्यो मेल्हाण।

प्रस्तुत कृति के संपादक डा तारकनाथ अग्रवाल ने उपर्युक्त उद्धरणों में प्रयुक्त मेल्हाण शब्द का हिन्दी अर्थ छोडना, परित्याग छोडा' किया है जो प्रसगानुकूल नहीं है।

मेल्हाण का वास्तविक अर्थ 'पड़ाव एकत्र होना, ठहरना' होता है। इन्हीं अर्थों में यह शब्द उपर्युक्त उद्धरणों में व्यवहृत हुआ है।

अन्य उदाहरण—

1 मिल्लणइ आगइ करइ 'मिलाण'।

—महादेव पारवती री वेलि, 289

मोगर

'मोगर' शब्द को देखते ही संस्कृत का 'मुद्गर' शब्द स्मरण हो आता है और बिना पूर्वापर संबंध पर विचार किए संस्कृत के आधार पर हिन्दी अर्थ कर लिया जाता है 'मोगरो'। जो सर्वथा असंगत है। उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है राजरूपक का एक पद्यांश—

मिळियो दळ 'मोगर' सूर महा।

—श्रीरामकरण आसोपा : राजरूपक पृ 198

विद्वान संपादक ने 'मोगर=मोगर के समान शत्रुओं को ठोकने वाला'। संपादक ने इसे 'सूर महा' का विशेषण मान लिया प्रतीत होता है। इसी तरह 'रारणमल छंद' की सम्पादिका श्री सरिता गहलोत ने इसमें प्रयुक्त 'मोगरे' को 'मोगरा (गदा)' बताया है। उदा.—

कहक्कि मुछ मोचि मल्ल मेछ भीछ 'मोगरे'।

—रारणमल छंद पृ 33

परन्तु 'मोगर' शब्द का वास्तविक अर्थ होता है— 'सेना'। उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में सेना अर्थ ही ठीक बैठता है।

अन्य उदाहरण—

1 जिहि 'मोगर' मवास मारि।

—पृथ्वीराज रासो, 14/59

2 'मोगर' सिद्धानी।

—वही, 14/55

3 छोळो दिया दुहुदळा, द्रिठ काठा 'मोगर'।
हवँ धाळ वागा मांडिए, रहि पगा बहुर॥

—निसाणी सुंदरदास की
(वचारिका, 29 जुलाई, 1971 अंक)

मौज

'वचनिका राठौड़ रतनसिंघ महेसदासोतरी' के माध्यम से 'मौजा समद' (छ स 48/1) चर्चा का विषय बना है। वचनिका के सम्पादक श्री शम्भुसिंहजी मनोहर ने 'मौजा का हिन्दी पर्याय 'दान' दिया है जो परम्परानुमोदित है। परन्तु श्री काशीरामजी शर्मा ने दान अर्थ पर आपत्ति प्रकट करते हुए लिखा है " उन्हें समुद्र द्वारा दिये गये दानों का पता होगा। मुझे तो यही पता है कि उसने एक बार परशुराम से भीत होकर कोंकण तट खाली कर दिया था, दूसरी बार राम को मार्ग दिया था। उससे पहले शंकरजी को विष दिया था और देवों को अमृत। चौदह रत्न भी निकाल दिये थे। पर मैं इनमें से किसी को दान नहीं मानता क्यों कि दान में स्वेच्छा भाव अपेक्षित है। हमने उदारता से लुटाने वाले पुरुषों के लिए—मौजी, लहरी, तरंगी जैसे शब्द प्रयुक्त होते देखे हैं यद्यपि इनमें थोड़ा 'अविचारकारी' का भाव भी होता है। 'मौजा समद' का अर्थ मुझे तो 'समुद्र' जैसा तरंगी ही ठीक लगता है बाकी शम्भुसिंहजी की मौज। (वचनिका का संपादन पृ 63 64)

'मौज का अर्थ तरंग लहर' भी होता है। कदाचित् तरंगों को समुद्र की देन मानकर परवर्ती राजस्थानी कवियों ने इसे मात्र 'दान' अर्थ में रूढ़ कर दिया हो। मौज का 'दान' अर्थ में अनेक बार प्रयोग हुआ है।

अन्य उदाहरण—

1 चळे मुजन दयवाहियै पाई 'मौज अपार।

—राजरूपक पृ 623

2 लाखा वडो दातार छ। तिन अनड न मन आई जु किणहीक वड पात्रनूं मौज दीजै।

—नणसी री ख्यात भा 2 पृ 236

3 मैंगळ तणी समापण मौजा सत्रवां रह्यौ नहीं ससार।

—दयालदास री ख्यात, भा 2, पृ 239

4 कुंजरां तणी मोहनाद करसी कवण, कवण कोडां तणी 'मौज करसी।

—महाराजा रामसिंघ कल्याणमलोत रो मरसियो

5 मनरा मह्राण समापण मौजा आपण दीना तरणा कुरद।

रघुनाथ रूपक, प 18

6 मौज' ऊझळ महराण ।

—रघुवर जसप्रकास, प 171

7 अणमिलणू मोए एमतो, मिटसी किम 'मौजा महराण ।

—बांकीदास ग्रथावळी, भा 3 प 10

8 त्याग समापण दान (तिम) आल मौज आप ।

—डिंगळकोश, प 249 दान नाम

9 मौज' ग्रवण रा माग, राखण रीत अमादरा ।

—प्रा, रा गी भा 5 प 126

10 महला अनेक 'मौज' विलावो महीप ।

—वही, प 142

रांगा

'रांगा' श०" ढोला मारू रा दूहा के माध्यम से चर्चा मे आया है। यथा—

सड सड बाहिम बबही, 'रांगा वहम चूरि ।

—ढोला मारू रा दूहा, 492

प्रस्तुत कृति के सम्पादक त्रय (ठा रामसिहजी, पारीकजी स्वामीजी) ने रांगा श द का अथ रानो दिया है जो ठीक है। पर तु डा माताप्रसादजी गुप्त ने सम्पादक त्रय के उपयुक्त अथ को अस्वीकार करते हुए लिखा है— 'रांगा >राग=कवच है (ना प्र प वष 65 अक 1) कदाच गुप्तजी का ध्यान 'राग=रागा श द को ओर चला गया प्रतीत होता है। 'राग' धातु से 'रानो का कवच बनता था परन्तु उपयुक्त उद्धरण में उस कवच का कोई प्रसग नही है। युद्ध के अवसर पर ही विभिन्न प्रकार के कवच पहने जाते थे। सामान्य आने जाने के समय कवच पहनने की कोई तुक नही है। अत सम्पादक त्रय का अथ रानो' ठीक है।

राणोराणि

'राणो राणी' शब्द 'रास और रासान्वयी काव्य' के माध्यम से प्रकाश म आया है। यथा—

रेलइ रयणायरमल, 'राणी राण' नमसुते ।

—रास और रासान्वयी काव्य, पृ 39

प्रस्तुत काव्य के सम्पादक द्वय—श्री दशरथजी शर्मा व श्री दशरथजी ओझा ने 'राणी राणो' का हिन्दी अर्थ 'राणा रानी' दिया है जो निरा शाब्दिक है। 'राणोराण एक मुहावरा है तथा इसका प्रयोग—'समग्र, समस्त, सभी'— के अर्थ में होता है।

अन्य उदाहरण—

1 सोवन यम मय चडावइ, राणोराणि से सहूय आवइ।

—पांडव चरित रासु, 280

राळि

'राळि शब्द' जिणदत्त चरित्त' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

सीस उघाडी घालियउ 'राळि'।

—जिणदत्त चरित्त, 430

प्रस्तुत कृति के सम्पादक द्वय (डा माताप्रसादजी गुप्त व श्री कस्तूरचंदजी कासलीवाल) ने 'राळि' शब्द का हिन्दी अर्थ 'राळि'= हालदी' व 'रग किया है जो केवल अनुमानाश्रित है। 'राळि' अथवा राळ' का वास्तविक अर्थ चीख' 'शोर' होता है और उपयुक्त उद्धरण मे यह शब्द 'चीख' के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है।

अन्य उदाहरण

1 सो घालीर समद महिं 'राळि ।

—जिणदत्त चरित्त, 241

2 जो यहु कथा घालिहइ 'राळि ।

—वही, 549

रावळा

रावळा शब्द 'ढोलामारू रा दूहा' के माध्यम से चर्चा म आया है। यथा—

नळ राजा आदर दियउ, जउ राजवियाँ जोग ।
देस वास सवि रावळा, अइघोहा अइलोग ॥
—ढोला मारू रा दूहा, 3

प्रस्तुत काव्य के सम्पादक त्रय (ठा रामसिंहजी पारीकजी व स्वामीजी) ने देस वास सवि 'रावळा' का हिन्दी अर्थ 'और उनको देश में निवास करने के लिए महल दिया है, जो प्रसंगानुकूल नहीं है।

'रावळो' तो भी ठाकुरो के अन्तःपुर को कहते हैं, परन्तु उपयुक्त पद्यांश में यह शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है। यह एक आदरार्थ संबोधन है जिसका हिन्दी अर्थ होगा— आपका, श्रीमान का'। साधारण बोलचाल की भाषा में भी 'हू रावळो चाकर हू अर्थात् मैं आपका सेवक हू जैसे प्रयोग प्रचलित हैं।

अन्य उदाहरण—

1 'रावळो विडद माहि प्यारो (कडो) लागै।
—मीराबाई की पदावली पृ 134

2 मीरा कहै मैं भई रावरी, छाडो नहा निराट।
वही, पृ 99

3 कडो जिको प्रताप 'रावळा मूढो जिको अम्हीणो माग।
—गीत पृथ्वीराज

रूपभेद— रावरो रावरी, रावरा

रिठि

'रिठि शब्द ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

अति घण ऊनमि आवियउ आसो 'रिठि झड़वाय।
बग ही भला त बप्पड़ा, धरणि न मुक्कइ पाई॥
—ढोला मारू रा दूहा 257

प्रस्तुत कृति के संपादक त्रय (ठा रामसिंहजी, पारीकजी व स्वामीजी) ने रिठि का अर्थ 'गीत दिया है, जो प्रसंगानुकूल नहीं है। कदाच संपादको

का ध्यान बोलचाल के 'रट्ठ' शब्द की ओर चला गया दृष्टिगोचर होता है, जिसका अर्थ 'अत्यन्तशीत' होता है।

राजस्थानी वीर काव्य मे 'रिठि' शब्द का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ होता है 'झड़ी' अथवा 'प्रहार'। निरतर प्रहारो' को भी 'झड़ी लगादी कह कर व्यक्त किया जाता है। उपर्युक्त उद्धरण मे 'रिठि' 'शब्द' 'झड़ी' के अर्थ मे ही ग्रहण हुआ है। पूर्व पद्यांश का अर्थ होगा — 'बहुत से बादल उमड़ आये हैं और उन्होंने वर्षा की अत्यन्त झड़ी लगादी है'।

अन्य उदाहरण—

1 रिण रस आयुध 'रीठ' माची।

—पृथ्वीराज रासो, पृ 239

2 सिवसी कनागे लागे रचावनी 'रीठ ।

—गीत मजरी, पृ 160

3 नराशा कनागीढाल प्रमागी तराळ नेजा।
राठौड़ा धनीमावामी नराताळ 'रीठ

—प्रा रा गी भा 2, पृ 168

4 खसगा कराटे झाट वागे राठ 'रीठ वागे।

—वही, भा 1, पृ 171

विशेष— रट्ठ या 'रीठ शब्द के प्रसगानुसार 'युद्ध अथवा 'तलवार' अर्थ भी होता है।

लाल

लाल शब्द 'ढोला मारू रा दूहा के द्वारा प्रकाश में आया है। यथा—

दुज्जण बयणन समरइ, मनाँ न वीसारेह।
कूर्मां लाल बच्चाँह ज्यू, खिण खिण चीता रेह॥

—ढोला मारू रा दूहा, 198

प्रस्तुत कृति के सम्पादक त्रय (ठा रामसिंहजी, पारीकजी व स्वामीजी) ने लाल शब्द का हिन्दी अर्थ प्रिय' दिया जो समीचीन है परन्तु

डा माताप्रसादजी गुप्त ने इस अथ को अस्वीकार करते हुए लिखा है ' लाल >स ललाय=स्नेह पूवक पालन करना । पर तु डा गुप्तजी ने दोहे के अ य शब्दों पर ध्यान नही दिया । यदि वे इस पूरे दोहे पर ध्यान देत तो पता चलता कि —कुररी पक्षी बच्चो को समुद्र तट पर छोडकर मारत म प्रवासी बन कर आ जाता हैं । यहा पर रहते हुए प्रत्येक क्षण अपने बच्चो को स्मरण करते रहते है । इसी सबल के आधार पर वे सुकोमल बच्चे पनपकर बड़े हो जाते हैं ।

लाल' शब्द एक बहु अर्थी विशेषण है जिसका अथ प्यारा , 'सु दर , किया जाता है ।

लावा

'लावा' श द राजस्थानी नीति दूहा' के माध्यम से प्रकाश म आया है । यथा—

जो काळो घुर जूपणो, लावा लखण न काय ।

—राजस्थानी नीति दूहा 945

प्रस्तुत कृति के सम्पादक श्री मोहनलालजी पुरोहित ने लावा श द का अथ बुरे किया है, जो प्रसगानुकूल नही है ।

लावा श द राजस्थानी साहित्य एव बालचाल की भाषा मे समान रूप से प्रयुक्त हुआ है । 'लावा का अथ लाभ' लिया जाना चाहिए ।

अ य उदाहरण—

1 हुर मज 'लावा लीजिय जी ।

—एक प्रसिद्ध धुन ।

रूपभेद— लावो

लासह्य

'लासहय श द रास और रामा वयी का य के माध्यम से प्रकाश म आया है यथा—

गय आगळिया गळ गळत दीजइ 'हयलास' ।

—रास और रासान्वयी काव्य, पृ 00

प्रस्तुत काव्य के सम्पादक द्वय श्री दशरथ शर्मा व श्री दशरथ ओझा ने 'लासहय' का हिन्दी अर्थ 'घोडों को घास' दिया है, जो समीचीन नहीं है। सम्पादकों ने 'लास' को कदाच् घास' पढ़ लिया ज्ञात होता है। प्रस्तुत शब्द एक न होकर दो शब्दों 'हय+लास से बना है। काव्य मे सुविधा की दृष्टि से कविजन फेर बदल कर लिया करते हैं इस शब्द का 'लास=समूह पंक्ति' तथा 'हय=घोडा' हिन्दी अर्थ किया जा सकता है। 'हयलास=घोडों की पंक्ति अथवा समूह।

अन्य उदाहरण—

1 राजति क्षतिएण पदाति कुंज रथ
हस माळ बयि 'लास हय'।

—वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री, 241

2 छूटी हहास उतावळीय।

—गोगाजी रा रसावळा

लू

'लू शब्द भी 'ढोला मारू रा दूहा के द्वारा प्रकाश मे आया'। यथा—

प्रीतम कामणगारियाँ, थळ थळ बादळियाँह ।
घण बरसइ सूकियाँ लू सू पाँगुरियाँह ।।

—ढोला मारू रा दूहा, 248

ढोला मारू के सम्पादक त्रय (ठा रामसिंहजी पारीकजी व स्वामीजी) न उद्धृत दोहे के उत्तरार्द्ध का हिन्दी अर्थ करते हुए उसके आगे प्रश्नवाचक लगा दिया है। वे (बादलिया) मेह बरसने से सूख जाती हैं और लू से पनप जाती हैं (?) (पृ 79)

डा माताप्रसादजी गुप्त ने प्रश्नवाचक का लाभ उठाते हुए लिखा है ' 'लू और 'सू अलग अलग नहीं है लूसू एक शब्द है और (लूसू)

<लूवय=वध करना, मारना, कदथना करना है। किन्तु यहाँ यह शब्द सम्भवत विनिष्ट, होना के अथ म प्रयुक्त है। चरण का अथ होगा—मेघ के बरसते ही मैं सूख जाती [redacted] और प्रांकुरित होती हुई भी विनष्ट हो जाती [redacted]।' (ना प्र प, वध 65 अ 1)

सीधे सादे और सरल शब्दों के अथ का डा गुप्तजी ने किस प्रकार घुमाया है, देखते ही बनता है। इसी प्रकार के विद्वानो द्वारा राजस्थानी भाषा का कल्याण होगा इसम सशय नहीं है। 'लू जसे बहुप्रचलित नाम का वध करके उसे लसू' बना दिया। प्रांकुरित होत हुए विनष्ट होने का क्या तात्पय! चरण का सीधा अथ किया जा सकता है— मेघा के बरसते ही सूख जाती हैं और लू (गम हवा) स प्रांकुरित हो जाती हैं। तभी उक्त बदलियो का 'कामणगारियाँ विशेषण सत्य होगा। जिन लोगो ने राजस्थान म ग्रीष्म ऋतु की बदलियो (ऊमो) को देखा है, वही उक्त तात्पय को समझ सकता है। लू नाम से कु चन्द्रसिंहजी न एक प्रकृति काव्य का सजन किया है तथा वह प्रशसित भी हुआ है।

वग्ग

'वग्ग शब्द' पृथ्वीराज रासो के माध्यम [redacted] चर्चा का विषय बना है। यथा—

मारिया राज पृथ्वीराज 'वग्ग ।

—पृथ्वीराज रासो, 10/42

रासो के सम्पादक डा वी पी शर्मा ने वग्ग का हिन्दी अथ 'वगे (हि वो)=बग गए दौड गए किया है जो समीचीन नहीं हैं। वग्ग [redacted] द समूह टोली श्रेणी के अथ में प्रयुक्त हुआ है। राजस्थानी भाषा म 'वग्ग> वाग भी बोला जाता है। इसका एक अथ स वल्गा>वाग=लगाम मुहरी होता है परन्तु उपयुक्त उद्धरण मे यह समूह, टोली अथ में ही प्रयुक्त हुआ है।

—अन्य उदाहरण—

1 वग्ग टाली किय।

—गोगाजी रा रसावळा,

2 जिमि के बाणा 'वग्ग' ।

—ढोला मारू रा दूहा, 324

3 वरहा हुदउ 'वग्ग ।

—वही 307

रूप भेद— वग, वाग

वरवळ

'वरवळ' शब्द 'ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम से चर्चा का विषय बना। प्रयोग इस प्रकार है —

ढालउ मारू परणिया, 'वरवळ हुयउ उछाह ।
आ पूगळ ची पदमिणी, अउ नरवर चौ नाह ।।

—ढोला मारू रा दूहा 10

ढोलामारू रा दूहा के सम्पादक त्रय—श्री सूर्यकरणजी पारीक, श्री नरोत्तमदासजी स्वामी एव ठा श्रीरामसिहजी— ने इस शब्द का अर्थ — धूमधाम से' और कोष्ठक म श्रेष्ठ कुल' दिया है। तथा परिशिष्ट मे दिये गये शब्दकोष म भी यही अर्थ लिया है। श्री माताप्रसादजी गुप्त ने अपने एक सशोधनात्मक लेख (ना प्र प भाग 65 अक 1) म सम्पादक त्रय के उपयुक्त अर्थ का खण्डन करते हुए इसे–वर+दळ=बारात अर्थ किया है परन्तु पर्याप्त खीचा-तानी के उपरात भी 'वरवळ' का सही अर्थ नही बठ सका। यद्यपि वरवळ शब्द का प्रयोग साहित्य म तो देखा ही जाता है, परतु साथ ही यह साधारण बोल चाल म भी व्यवहृत होता है। गावो म जब कोई सगाई सम्बन्ध होता है उसमें वर कन्या के अतिरिक्त दोनो परिवार का धन द्र य मान सम्मान, आव आदर म सराहनीय माने जाते हो तो लोग कहते सुने जाते है— 'ओ र सबध तो वरवळ रो हुयो ।

युद्ध और विवाह म दोनों पक्ष सभी प्रकार से समान होने चाहिए। यदि दोनों पक्षो म असमानता हो तो ये दानो सम्ब ध सराहनीय नही कहे जा सकते हैं। हिन्दी में 'वरवळ के सभी भावों का प्रकट करने वाला कोई शब्द नही मिलता है अतएव इसके अर्थ से मिलता जुलता उपयुक्त शब्द है, जिससे

उक्त अर्थ के साथ संगति बैठ जाती है। उदाहरणांकित दोहे का हिन्दी भावार्थ इस प्रकार किया जा सकता है—'ढोला और मारू परिणय सूत्र में बंधे यह विवाह (उछाव) उपयुक्त हुआ क्योंकि यह (मारू) पूगल गढ़ की पद्मिनी है और वह (ढोला) नरवर नगर का अधिपति।

अन्य उदाहरण—

1 मरोरा मेड़ धरा सुरसाण, सराखा राज अन सुरताण।
'वरदूळ' मेडि वडे वीवाह मिली धण तुम्म महारिण माहि॥
—राउ जतसी रो रासो (अप्र)

2 अरपियो उदक सु सुविस आपापणो।
परणजा रुकमिणि किसन 'वरदळ' पणा॥
सांयां झूला रुकमिणी हरण (अप्र)

3 ईस प्रजा अमसाह री जाणो मन जैसाह।
पुत्री निज नवकोट पह, 'वरदळ' चो वीमाह॥
—राजरूपक, 597

4 दोनू देरावर तणी भटियाणी वड भाग।
ओप वर वरदळ अभी, सीम अचळ' सुहाग॥
—वही 670

5 दळपति कोइ न दूजो वरदळि
निर वळिया मात सोक नर।
वर ऊछजि विवाऱ्या कहियो
राव तणा घर लहीस वर॥
दूंगो विसराळ रावरतनसिंघजी री वेलि
(मरु भारती वर्ष 16 अंक 3)

वहिलउ

'वहिलउ शब्द' महादेव पारवती री वेलि के माध्यम से चर्चा में आया है। यथा—

'वहिलउ दरसण हवइ विसमर।
—महादेव पार्वती री वेलि 92

वेलि' के सम्पादक श्रीरावतजी मारस्वत न 'वहिलउ' शब्द का हिन्दी अथ 'प्रिय' दिया है, जो प्रसगानुकूल नही हैं।

'वहिलउ' शब्द का अथ 'शीघ्र', 'जल्दी' होता है और इसी अथ म उपयुक्त उद्धरण में प्रयुक्त हुआ है।

अन्य उदाहरण—

1 विहाणु नदो नाथ आगो 'वहेला'।

—नागदमण, 1

2 'वहिलउ' दीनो हुकम विसमर।

—महादेव पारवती री वेलि, 372

3 विसन न ल्याव 'वहिलो'।

—पीरदान लालस ग्रथावली 60

4 पहलो 'वहलो' पवण पिलाणि।

—वही, 90

5 'वहिलो' आव लाछोवर।

—वही, 102

6 असि वेगि चल्ने वहिया वहिला।

—पाबूजी धांधल रो छन्द, 18

वासइ

'वासइ' शब्द भी 'ढोला मारू रा दूहा' के द्वारा प्रकाश मे आया है। यथा—

सूवा एक सदेसडउ, वार सरेसी तुज्झ।
प्रीतम 'वासइ' जाई नई, मुई सुणाव मुज्झ॥

ढोला मारू रा दूहा, 39

उपयुक्त उद्धरण म प्रयुक्त 'वासइ' शब्द का हिन्दी अथ 'पास' दिया है (सम्पादक त्रय), जो प्रसगानुकूल नहीं है। यह राजस्थानी भाषा का बहु प्रचलित शब्द है इसका अथ होता है—'पीछे'। प्रस्तुत दोहाथ का हिन्दी

अर्थ इस प्रकार होगा—हे सुआ ? तुम प्रीतम (ढोला) के पीछे जाकर मेरे मरने की सूचना दो' (ताकि ढोला इस दुखद समाचार को सुनकर लौट आए)।

अन्य उदाहरण—

1 'वास' साद हुयो इक वागो, निसती तजा चलिया नेठाह।

—प्रा रा गी भा 1 पृ 9

2 माठ ससउ पिंगळ अवास वासई राजा चडपई यहाणि।

—ढोला मारू रा दूहा, परिशिष्ट पृ 242

3 'वासइ' वधा वयव वेउ, गाढी मढ़िली पधि करेउ।

पांडवचरित रास, ठवणी 8/5

4 माणसिया मरजायसी 'वासे' रहसी वयण।

—राजस्थानी नीति दूहा, 657

बानैत

'बानैत' शब्द 'वचनिका राठौड़ रतनसिंघ महेसदासोत री' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

थींद घडा बानैत तेडि माहेस तियारां।

—वचनिका, पृ 74

वचनिका के संपादक श्री रामसिंहजी मनोहर ने 'बानैत' शब्द का हिन्दी अर्थ '=शूरवीर, योद्धा (बानाधारी अथवा वीरता का प्रतीक चिह्न धारण करने वाला)' किया है जो परंपरानुमोदित है परन्तु श्री काशीरामजी शर्मा ने इस अर्थ पर आपत्ति प्रकट करते हुए लिखा है 'हमने तो स्वयं (बानैत का) बाणधारी ही अर्थ किया है क्योंकि बानाधारी अर्थ हो तो निम्नलिखित में यथा अर्जुन की वेषभूषा पर कवि भट्ट हुआ है— दानी यदुनाथ सो भ दानी जगनाथ जसा मानी कुरुनाथ सो न बानैती है पाथसो— प्रस्तुत कवित्त के तो पंक्तियां आइने अक्षरों की उद्धृत हैं फिर विशेष में यह भी लिखा है कि इस पद में जिन योद्धाओं का वर्णन हुआ है उनके विस्तृत परिचय के लिए 'परिशिष्ट' में ऐतिहासिक टिप्पणियां भी देखिए। सार यह कि भाष्य को गहरा मान दीजिए। (वचनिका का संपादन पृ 59 60)

'बानैत' शब्द का अथ 'बानाधारी, शूरवीर, योद्धा' होता है। योद्धा धनुष बाण रखते ही हैं, परन्तु इस अथ वाला प्रयोग देखने म नही आया। श्री शर्मा ने जो उद्धरण प्रस्तुत किया है, उसमें प्रयुक्त 'बानेत शब्द भी उपर्युक्त अथ ही प्रकट करता है।

1 विन एकण बानत र भुख मुगा फौज मुडाय।

—वीर सतसई।

2 थागो खग 'बानत लाज उदा जग लेख।

—राजरूपक, पृ 250

3 बाबा राखो लाज 'बान' री।

—एक राजस्थानी भजन

वार

'वार शब्द 'वीसलदेव रासो' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

जाहि हो मंत्री 'वार मलाउ

—वीसलदेव रासो, 80/9

प्रस्तुत रासा के सम्पादक डा तारकनाथ अग्रवाल ने 'वार शब्द का अथ 'शीघ्र किया है, जो भ्रात हैं।

वार' शब्द राजस्थानी-साहित्य एव साधारण बोल चाल की भाषा म समान रूप म व्यवहृत हुआ है। इसका अथ शीघ्र' से विपरीत ढील, 'शिथिलता', 'देरी' होता है। उपयुक्त उद्धरण म वार शब्द देरी अथ म ही प्रयुक्त हुआ है। यथा— हे मन्त्री ! जाओ, देरी मत करो।'

अन्य उदाहरण—

1 उलीम ? चढियउ छइ राउन लावहू 'वार'

—वीसलदेव रासो, 19/4

2 रे पडिहार म लावउ वार'।

—वही, 119/7

वाहर

वाहर शब्द 'रास और रासान्वयी काव्य' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

इक 'वारू' असवार सार साहणव लावइ।

—रास और रासान्वयी काव्य, पृ 134

प्रस्तुत कृति के सम्पादक द्वय (श्री दशरथजी शर्मा व श्री दशरथजी ओझा) ने वारू शब्द का हिन्दी अर्थ 'हाकरना' किया है, जो प्रसगानुकूल नही है। यह शब्द वाहर से बना है। 'वाहर' का अर्थ होता है 'सहायता रक्षा'। वारू' में ऊ' प्रत्यय है अत 'अर्थ हुआ सहायता करने वाला।

किसी प्रकार के 'धन, पशु' इत्यादि को अपहृत करने के पश्चात् उसे लौटाने के लिए जो प्रयत्न होता है, उसे 'वाहर' करना कहते हैं। वाहर मे जाने पर योद्धाओं अपहृतकर्ताओं से सामना भी होता है। 'वाहर करने वालों की विजय होने पर अपहृत धन वापिस लाकर उसके मालिक को सौंप देते हैं।

अन्य उदाहरण—

1 नमो 'वाहरू वेद प्रिथमादि विंदु।

—पीरदान ग्रन्थावली, पृ 28

2 वळ परमेस वेदातणो 'वाहरू'।

—वही, पृ 79

3 धक धण वदै जीदो वरूया, वागवाळी साम्ही 'वाहरूआ।

—पाबूजी पाधल रो छद, 30

4 चउथीया वार 'वाहर करि चतुभुज
संख चक्र धर गदा सरोज।

—वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री 64

5 'वाहर रे 'वाहर' कोई छइ वर
हरि हरिणाखी आइ हरि।

—वही 112

वाहळा

'वाहळा' शब्द 'वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री' तथा 'डिंगळ में वीर रस' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

1 अति अब कोप कुवर ऊफणियउ,
वरसाळू 'वाहळा' वरि।

—वेलि, द्वाला 34

2 नर महव 'वाहळ' समिलिय।

—डिंगळ में वीर रस, 2/15

'वेलि' के सम्पादक त्रय (डा रामसिंहजी, श्री पारीकजी व स्वामीजी) तथा श्री दीक्षितजी एवं डिंगळ में वीर रस' के सम्पादक श्री मोतीलालजी मेनारिया ने वाहळा व 'वाहळ शब्द का हिन्दी अर्थ 'बादल' बताया है जो प्रसगानुकूल नहीं है। 'वाहळा' शब्द बोल चाल की राजस्थानी में भी प्रयुक्त होता है और इसका अर्थ होता है 'नाला'। उपर्युक्त दोनों उद्धरणो मे इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

अन्य उदाहरण—

1 रूक झड वधाळा 'वहाळा' रत्त रळवळ।

—प्रा रा गी भा 3, पृ 105

विडग

'विडग' रूपभेद 'विरग' शब्द 'पृथ्वीराज रासो' के माध्यम से प्रकाश मे आया है। यथा

पिष्पि इक चढे 'वरग'।

—पृथ्वीराज रासो, 19/39

रासो के सम्पादक डा वी पी शर्मा ने 'विरग' का हिन्दी अर्थ 'शूरवीर' दिया है जो प्रसगानुल नही है। 'विरग>विडग' शब्द बहुप्रचलित है, इसका हिन्दी अर्थ घोडा' होता है।

अन्य उदाहरण—

1 वाकड मुहां 'विडग'।

—ढोला मारू रा दूहा, 227

2 वाजी बाज पमग 'विहग' ।

हम्मीर नाममाळा (घोडा रा नाव)

3 हर हैमर वगाळ हय वाजा खंग 'विहग ।

—अवधानमाळा (घोडा रा नांव)

4 दइव करिस एरसा दळ 'विहग सेत इनेक' विमळ ।

—पीरपानलालस ग्रन्थावल, पृ 89

विळिकुळियउ

'विळिकुळियउ शब्द' ढोला मारू रा दूहा के माध्यम से चर्चा मे आया है। यथा—

मारवणी मुख ससि तणइ कसतूरी महकाइ।
पातइ पन्न पीयणउ, 'विळिकुळियउ तिणि ठाइ ।।

—ढोला मारू रा दूहा, 600

प्रस्तुत कृति के सम्पादक त्रय (डा रामसिंहजी पारीकजी व स्वामीजी) ने विळिकुळियउ शब्द का अर्थ 'निकला' (पृ 200) तथा 'चचलता से साथ हिलना (पृ 548) किया है। डा माताप्रसादजी गुप्त ने उक्त अर्थों को अस्वीकार करते हुए लिखा है— दूसर को "यामुग्ध करने के लिए विस्वर वचन बोलने वाला' (पा स म) (ना प्र प, वर्ष 65 अक 1)

विळकुळणो राजस्थानी की बहुअर्थी क्रिया है, इसका अधिकतर प्रयोग प्रकट होना अर्थ में हुआ है। साथ ही 'तमतमाना जसा भाव भी व्यक्त होता है जो निम्नांकित उदाहरणों से स्पष्ट है—

1 बबरीय झौटि झटक इक वालि, 'वळकळियउ वदाणु पियु भ्रकुटी भालि ।

—राजस्थान के कवि भा 1, पृ 59

2 वीर समाण अवसाण सिद्ध विळकुळे

—प्रा रा गी, भा 3, पृ 105

3 'विळकुळे नरां पुर सुरा वाखाणिया।

—वही, 143

4 ये 'विळकुळे' क्रमध अवतारी, तेजगाळे मुगलाण तणो ।
—वही, भा 2, पृ 12

5 पडतुग दीरांतिह 'विळकुळीय', अस छोडी ल्हास उतावळीय ।
—पाबूजी धाधलरो छद,

6 खळहळा खेत घळवळा खापर भर वीसहथ 'विळकुळी ।
—रघुवर जसप्रकास, पृ 324

7 मेदनाद पडत 'विळकुळीया' महल महल सुणि सुरनर मिळिया ।
—रामरासो (अप्रकाशित)

8 कूदना कायरा पाजतो काहळो वीर आगसमा सूरमा 'विलकुळी' ।
—सायां झूला रुक्मिणी हरण ।

9 घर छळ समूह छळ वागळ
'विळकुळ ते उठिया वदनि ।
—प्रा रा गी, भा 8, पृ 50

10 'विळकुळे' राजरमणी वदन,
निरख रूप गरधद रा ।
—राजरूपक, पृ 545

11 'विळकुळियउ' वदन जेम मासारयउ,
नयहि धनुख पुणच सरगधि ।
—वेलि ढाला 131

= विळकुळियउ = आरतपणउ आसरयउ ।
—ना थ बा बा बो (अप्रकाशित)

बेगड़

बेगड़ शब्द वचनिका राठौड़ रतनसिंह महेसदासोतरी के माध्यम से चर्चा का विषय बना है । यथा—

बेगड़ मोड़ धवळ रा दूहा । (53/30

—वचनिका, पृ 133

उपर्युक्त उद्धरण मे प्रयुक्त 'वेगडे' शब्द का श्री शम्भुसिहजी मनोहर ने '=बडे या भयङ्कर सीगोंवाला (व पृ 142) श्री साधु सुन्दरगणि के अनुसार यह 'विकट शृङ्ग' से व्युत्पन्न है।' हिन्दी अर्थ किया है, जिस पर आपत्ति करते हुए श्री काशीराम शर्मा ने लिखा है— हम ऊपर बता चुके हैं यह व्यक्ति का नाम है। दूहे सम्प्रति मेरे पास नही है, अन्यथा मैं एक दो लिखता। 'विकट शृङ्ग' कोरी कल्पना है। व्यक्ति का वेगा है। जन लेखकों में 'भाषा' के शब्दो के संस्कृतिकरण की विचित्र प्रवृति थी। प्रबन्ध कोश' मे ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे। यथा बही>बहिका, रसोई>रसवती, फगर> प्रगर। आजकल भी कुछ लोग सरकार(सरकार) चिटिका (टिकट), सूचुक (स्विच) जैसे प्रयोग करते हैं। (वचनिका का सपादन पृ 70)

उपर्युक्त उदाहरण मे प्रयुक्त 'वेगड सांड' विशेषण है और 'धवळ' के लिए प्रयुक्त हुआ है। ध्वनि साम्य के कारण 'विकट शृङ्ग' जसी व्युत्पत्तियो से शब्दों का द्रविड प्राणायाम कराया जाता है। यदि व्युत्पत्ति के बिना काम नही चले तो इस वे>बे=दो+गड=शृङ्ग अर्थात् 'दो सीगो वाला+सांड=वृषभ अर्थात् पराक्रमी उत्कृष्टवीर'।

अन्य उदाहरण—

1 वेगडइ सांड वीरम विभाड।

—छद राव जतसी रो, छ 2

रूप भेद—वगडइ

वेढि

वेढिउ शब्द रास और रासान्वयी काव्य' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

आपापू वेढिउ जिण कालि ऊगत सूर।

—रास और रासान्वयी काव्य 118

प्रस्तुत काव्य के सम्पादक द्वय श्री दशरथजी शर्मा व श्री दशरथजी ओझा ने 'वेढिउ' शब्द का हिन्दी अर्थ वेढिउ<वेढ (वेष्ट)=लपेट लेना अपने अधिकार में कर लेना। दिया है जो प्रसंगानुकूल नही है। ध्वनि साम्य के कारण 'वेढ' को संस्कृत 'वेष्ट' मान लिया है, जो समाधान नहीं है।

वढ' का अर्थ युद्ध लड़ाई, झगड़ा' होता है और राजस्थानी कवियों ने इसी अर्थ में व्यवहार किया है। उपयुक्त उदाहरण में 'विढि+इउ' है, जिसका अर्थ होगा 'योद्धा'। वेढ शब्द आज व्यवहार में भी प्रचलित है।

अन्य उदाहरण—

1 दाणव देव वे 'विढुनक्कतउ।

—प्राकृत पैंगलम् 132

2 वि' वपु उड खड विहंड।

—राउ जैतसी रा रासा

3 वरद्दळ वढ वडेवीवाह।

—वही

4 कीजइ मेळ 'वेढि छाण्डिवइ।

—कान्हड़दे प्रबंध, पृ 101

5 विजड़ा मुहे वडते वळमद्र, भिरा पुज कोधा समरि।

—वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणीरी 126

6 विढता सुंभ निसुंभ वाधारइ।

—महादेव पारवती री वेलि 185

7 आज महाणी आवरी, विमर विनगर वेढ।

—वीरदान ग्रंथावळी पृ 12

8 विढि' घेन समापिय सोग वन्हे।

पाबूजी धाधल रो छन्द, 45

9 'विढ भिजरी एह उछाह वाळी।

—नागदमण 121

10 वन्जमतइ हटियार एउ वेढ' उतरइण।

—रा भी रा क्षा, पृ 60

इसमे-विढ वेढ

सथ

सथ' शब्द 'वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

सुखदेव व्यास जयदेव सरिसा
सुकवि अनेक तउ एक 'सथ' ।

—वेलि दूहा 8

वेलि के अन्य टीकाकार श्री दीक्षितजी ने 'सथ' शब्द का हिन्दी अर्थ '—सति है' किया है, जो प्रसंगानुकूल नहीं है।

सथ' को ढूंढाड़ी टीका में रीति बताया गया है तथा श्री नरोत्तमदासजी ने इसके दो अर्थ —एक निष्ठ मत बताये हैं। सम्पादक त्रय (ठा रामसिंहजी, पारीकजी व स्वामीजी) भी 'मत' अर्थ की ही पुष्टि करते हैं। अत 'सथ' का हिन्दी अर्थ मत या 'रीति' लिया जाना चाहिए।

सवळी

सवळी' शब्द भी ढोला मारू रा दूहा के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

'सावळी' कांइ न सिरजिया, अंबरि लागि रहंत।
वाट चलंता माल्हाप्रिय, ऊपर छांह करंत ।।

—ढोला मारू रा दूहा, 415

'सावळी' शब्द का सम्पादक त्रय (श्री ठा रामसिंहजी पारीकजी व स्वामीजी) ने 'श्यामल बदली' हिन्दी अर्थ किया है। पद्य में प्रयुक्त अंबर' एवं 'छांह' शब्दों को देखकर कदाच यह अर्थ प्रकल्पित किया है, जो प्रसंगानुकूल नहीं है।

सावली शब्द का हिन्दी अर्थ होगा 'चील्ह' नामक पक्षी। नायिका कहती है— यदि भगवान ने मुझे चील्ह बना दिया होता तो मैं आकाश में उड़ती रहती तथा अपने प्रिय ढोला के चलने पर उसे अपनी छाया से आच्छादित करती रहती। वर्तमान में भी चील्ह पक्षी को 'सावळी' कहा जाता है।

अन्य उदाहरण—

1 वणि वाडी सचरियउ, फूल करिया बहुपासि ।
समळी रूपि सावित्री तेई उतपति अकासि ।।

—माधवानळ कामकंदळा पृ 59

2 'समळी और निसक मख, जबुर राह न जाय।

—वीर सतसई,

रूपभेद— समळी सवळी, सामळो।

विशेष— सवळो का एक अथ 'श्यामल' भी होता है, जिसे प्रसग देखते हुए सही कहा जा सकता है।

सरजित्त

'सरजित्त' 'शब्द ढोला मारू रा दूहा के माध्यम से चर्चा का विषय बना। यथा—

डेडरिय खिण मइ हुवइ घण वूठा 'सरजित्त।

—ढोला मारू रा दूहा 548

प्रस्तुत शब्द सरजित्त' का डा माताप्रसादजी गुप्त ने > स सर्जित (=बनाया हुआ) स गुत्प न मान कर जो बनाया हुआ अथ लिया है, यह प्रसगानुमोदित नहीं है। बादल के बरसते ही मढको को कौन बनाता है। वस्तुत इस शब्द का अथ जी उठना' अथवा 'सजीवित होना' होता है। इस प्रकार उपयुक्त अद्धली का अथ होगा—घन के बरसते ही मेढक क्षण भर मे जी उठते हैं अथवा सजीवित हो जाते हैं।'

रूपभेद—सरजीत।

साई

साई शब्द भी 'ढोला मारू रा दूहा के माध्यम से चर्चा का विषय बना। यथा—

साई देखे सज्जना, रातड दूँणि परि रुन।
उरि ऊपरि आसू ढळइ जाँणि प्रवाळी चून।।

—ढोला मारू रा दूहा, 377

सम्पादक त्रय (डा रामसिंह जी पारीकजी व स्वामीजी) ने 'साई देदे' का हि दी अथ धाइ मारकर' किया है। (पृ 121) तथा इसे साति=पेशगी दिया हुआ धन से व्युत्प न बताया है। (पृ 509) डा माताप्रसादजी गुप्त ने उपयुक्त अथ को अस्वीकार करते हुए समजत प्रा >साई स >साति (स+आदि) है' मानते हुए जो पारज अथ प्रस्तावित करते हैं (ना प्र पत्रिका वष 65 अक 1) वो किसी भी दृष्टि से सगत नही है।

'साई' यद्यपि पेशगी दिए हुए धन अथ मे गृहीत किया जाता है, जिसके अनुसार इसे परिचय का वाची भी माना जा सकता है अत उपयुक्त उद्धरण मे 'साई का अथ 'परिचय ही लिया जाना चाहिए। साथ ही यह 'साई शब्द 'स्नेहालिगन के अथ म भी बहुतायत से लिया जाता है यह भी समीचीन है।

अन्य उदाहरण—

1 सावलिगि सिउ 'साई लिद्ध बहुमान मन सुद्धिइ दिद्ध।
—सदय वत्सवीर प्रबध, 240

2 ता राजा छाडि रेवत साई दोधु सामसी करु।
—वही 311

3 साई लई लगिइ पाइ ता वासइ अवली गमराइ।
—वही, 652

4 'साई देज्यो सज्जना म्हा साम्हा जोएह।
—ढाला मारू रा दूहा, 406

5 ढोला मारू अमजयउ माई दे मिलियाह।
—वही 312

साहण

साहण शब्द 'रास और रासान्वयी काव्य के माध्यम से चर्चा मे आया है। यथा—

गज माहणि सचरीय महुणर वेढीय पोयणपुर।
—रास और रासा वयी का य, 131

प्रस्तुत कृति के सम्पादक द्वय (डा दशरथजी शर्मा व डा दशरथजी ओझा) ने 'साहण' शब्द का हिंदी अर्थ='स साधन<प्रा साहण' किया है, जिससे उपयुक्त उद्धरण का भाव स्पष्ट नहीं हो पाता।

साहण' शब्द बहु अर्थी है प्रसगानुसार इसके कई अर्थ होते हैं, परन्तु साहण का प्रमुख अर्थ 'घोडा', 'अश्वसेना' ही होता है। उपर्युक्त उद्धरण में यह घोडा' अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

अन्य उदाहरण—

1 एक वारु असवार सार 'साहणवे' साथइ।

—रास और रासान्वयी काव्य 134

2 कोपानळ परजळीय वीर 'साहण' पलणावइ।

—वही, 139

3 परिवार पूत्र पोत पडपोत्र,
अरथ 'साहण' मडार इम।

—वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री, 281

4 असी सहस 'साहण' मिळै।

—वीसळदेव रास, 26

5 मोटा मालिक सथ तडाव्या 'साहण' फरउ सजाई।

—कान्हडदे प्रबध, पृ 68

6 जेहल 'साहण' जेह साहण समुद समाहिया।

—बाकीदास ग्रन्थावली भा 3, पृ 16

साहणो

'साहणो' राजस्थानी भाषा का बहुप्रचलित क्रियापद है। इसका हिंदी अर्थ 'धारण करना, पकडना' होता है। राजस्थानी भाषा के ग्रथो के हिन्दी टीकाकारों ने 'साहणो' शब्द के अनेक विचित्र अर्थ प्रतिपादित किये हैं। जिनका विस्तार भय से यहा पर उद्धृत करना समीचीन नही है। साहणो का हिन्दी अर्थ धारण करना, पकडना ही होता है।

अथ उदाहरण—

1 साहे=सगृह्य (सुबोध मजरी), पकडि (ढूढाडी टीका), झाली (नारायणवल्ली टीका), पकडकर (श्री स्वामीजी)

2 बामइ करि सिर साह्या' वेणि।

—सदय वत्सवीर प्रबध, 192

2 बहिन भणीनइ 'साही' बाह।

—वही, पृ 240

3 बीजळ साह' बोलियो, इणडाकण मू आय।

—वीर सतसई,

4 ऊभी साहइ लाज।

—ढोला मारू रा दूहा, 480

5 साम्ही अणी सिमठ दिख साहि।

—महादेव पार्वती री वेलि, 222

6 सिर तिणवार पनग 'साहियइ।

—वही, 366

7 क चूडी साहा करा।

—राजरूपक, 337

साहे

'साहे' शब्द 'वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

> वळि बध समथ रथ ल वइसारे,
> स्याम कर साहे सुन्दरि।
> वाहर रे वाहर कोइ छइ वर,
> हरि हरणाखा जाइ हरि॥
>
> —वेलि, ढाला 112

वेलि के टीकाकार श्री दीक्षितजी ने साहे' शब्द का हिन्दी अर्थ 'साधकर' किया है जिससे वास्तविक अर्थ स्पष्ट नहीं होता।

'साहणो' राजस्थानी भाषा का बहुप्रचलित क्रिया पद है, जिसका हिन्दी अर्थ 'पकड़ना, धारण करना' होता है। उपर्युक्त उद्धरण में 'कर साहे' का हिन्दी अर्थ 'हाथ पकड़ कर' ही है।

अन्य उदाहरण—

1 'वलिवध श्रीकृष्ण समय पणइ रूकमिणी रउ करुहाथ आपरइ हाथ सू साहि झालो पछई रथि बइसारो इम कहत छहुउ।

—नारायणवल्ली का बा टीका (अप्रकाशित)

2 कामइ करि सिर 'साही' वेणि।

—सदय वत्सवीर प्रबंध, 192

3 बहिन मणी नइ 'साही' बाह।

—वही, पृ 240

4 बीजळ 'साहे' बोलियो, इण डाकण मू आय।

—वीरसतसई

5 ऊमा 'साहइ' लाज।

—ढोलामारू रा दूहा, 420

6 इक दिन अट्ठ सुरताण 'साहे'।

—पृथ्वीराज रासउ, 5 13 8

7 सामी अणी लियउ दिस 'साहि'।

महादेव पार्वती री वेलि, 222

8 साहिब सा हत्थइ हीया, हत्थइ साहिब 'साहि'।

कुशल शतक 77

डा माताप्रसाद गुप्त ने 'साहि<साध=उन्नत करना' अर्थ करते हुए आगे प्रश्न चिह्न लगाया है।

सिलह

'सिलह' शब्द 'डिंगळ में वीररस के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

सिलह साह सज्जत।

डिंगळ में वीरस, 2/8

प्रस्तुत सकलन के सम्पादक श्री मोतीलालजी मेनारिया ने 'सिलह' का हिन्दी अर्थ 'हथियार दिया है' जो अयुक्त है। इस शब्द का वीर काव्य मे प्रचुर मात्रा म प्रयोग हुआ है। सिलह का हिन्दी अर्थ कवच' होता है।

अन्य उदाहरण—

1 सिलह' माहि भरकात्र सपेसी।

—वेलि, 104

2 हिवइ जिके सुभट राज कन्या र साथ चढी चढा पूठ पछी आया। तिरा सुभट तेअवत सिलह—सनाहामा है परकाव।

नारायणवल्ली बा व बो (अप्रकाशित)

3 'सिलह' अटकका मोमसम हुव बटटका दोय।

—चरनिशा रा र म दा री पृ

4 सिलह' सजि सरदार सह।

डिंगल मे वीररस, 2/48

सींगण

सीगण शब्द ढोला मारू रा दूहा के माध्यम स चर्चा का विषय बना है। यथा—

'सीगण' कोई न मिरजियाँ, प्रीतम हाथ करत।
पाठी साहत मूठिया काढी कासीसत॥

—ढोला मारू रा दूहा 416

सीगण शब्द का हिन्दी अर्थ सपादक त्रय (ठा रामसिंहजी, श्री सूर्यकरण जी पारीक व स्वामीजी) ने नरसिंह बताया है, जो एक वाद्य होता है परन्तु इस अर्थ की यहा पर कोई सगति नही बठता है। अतएव सम्पादक त्रय ने दोहे के उत्तरार्द्ध का अर्थ स्पष्ट बताया है। यह सभी सीगण के वास्तविक अर्थ के बिना जाने हुआ है, अन्यथा दोहे म कही भी कोई क्लिष्टता नही है।

सीगण राजस्थानी का बहुप्रचलित शब्द है। यह एक प्रकार का धनुष होता है परन्तु वीर काव्य के सजकों ने इसे साधारण धनुष के पर्याय के रूप मे भी प्रयुक्त किया। उपयुक्त सम्पूर्ण दोहे का हिन्दी भावार्थ इस प्रकार किया

जा सकता है— (भगवान ने मुझे) प्रियतम के हाथ का धनुष क्यों नहीं बनाया (अन्यथा) वे मुझे अपनी मुट्ठी में दृढ़ता के साथ पकड़ते और प्रसन्न होकर खींचते।

अन्य उदाहरण—

1 सींगणी' परठयउ तीर।

—कान्हड़दे प्रबन्ध, 31

2 सपराणा 'सींगणी' गुण गाजई।

—वही, 52,73

3 सामा 'सींगण' तीर निछूटइ।

वही, 88, 215

4 सींगणी' गुण टकार, सहित बाणावलि ताणई।

—भरतेश्वर बाहुबली रास, 126

5 'सारख 'सींगणी'।

—गोगाजी रा सावळा, 19

6 गाढई गुणि सींगण ऋसत्र सह।

—सदयवत्स चरित्र 630

सीकोट

सीकोट शब्द ढोलामारू रा दूहा के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

उत्तर आजस उत्तररइ ऊपडिया 'सीकोट'।
काय दहेसी पोयणी काय कुवार घोट॥

—ढोला मारू रा दूहा 296

उपर्युक्त दोहे में प्रयुक्त 'सीकोट' शब्द का सम्पादक त्रय (ठा रामसिंह जी, पारीकजी व स्वामीजी) ने "शीत के गढ़ के गढ़ उमड़ आये हैं (अर्थात् कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा है)"। श्रीमाताप्रसादजी गुप्त ने संपादक त्रय के उक्त अर्थ को नकारते हुए लिखा है किन्तु शीत के गढ़ के गढ़ उमड़ आये हैं यह कल्पना युक्तिसंगत नहीं ज्ञात होती, क्योंकि गढ़ तो सुरक्षा के लिए

होते हैं। मेरी समय मे 'मोसोट' है—सिग्रु<सिग्रु=सहिजन का पेड और उप्पडना है —उत्+पत्=उखडना। अवधी में उपर क्रिया इसी अर्थ मे अब तक प्रयुक्त होती है। इस प्रकार 'उप्पडिया सीवोट' का अर्थ होगा। उस उत्तर वायु के झोंके से) सहिजन का पेड उखड गया है। (ना प्र पत्रिका, वर्ष 65 अक 1)

सम्पादक द्वय एव श्री गुप्तजी दोनो ने उक्त शब्द का अभिप्राय ठीक से नही समझा है, केवल व्युत्पत्ति के चक्कर मे पडकर अर्थ का अनर्थ खडा किया गया है, जिसकी मूल प्रसग के साथ कोई सगति नही है। 'सीवोट' शरद ऋतु मे जब अत्य त तीव्र ठड पडती है तब सूर्योदय स पूर्व टीबा वाली जमीन पर एक काल्पनिक नगर सा प्रतीत होने लगता है उसे कहते हैं। सस्कृत भाषा में इसे गधर्व नगर की सज्ञा दी है। गर्मियो म तीव्र गर्मी के कारण सूखे मैदान म समुद्र लहराने का सा भ्रम होने लगता है, जिसे मृगतृष्णा कहा जाता है। ये दोनो प्रक्रियायें दृष्टि भ्रम से प्रतीत होती है।

अन्य उदाहरण—

1 इतरा मांहे वात करता वार लाग। वकुठ री रुस 'सीवोट' जेही गवरा इच्छा सरूपी गढ कोट बाजार सनमणा सोत्रन में आवास गोख जोख चित्राम चित्र साळा रचाई।

—विडिया वाणा वचनिका, 365

सुभिआण

सुभिआण' शब्द राजस्थानी भाषा के काव्य एव वतमान कालिक बोल चाल की भाषा म समान रूप से व्यवहृत होता है। इसका हिन्दी अर्थ 'बुद्धि मान' यानी श्रेष्ठ किया जाता है।

अन्य उदाहरण—

1 साई तुझ सुविहाण वडो दीवाण विगतौ।

—पीरदान ग्रन्थावली, पृ 8

2 श्रीकृमजी चढ़िजो तुरत, साहिबजी सुभिआणा।

—वही, पृ 12

3 सुत्यो सु बीर 'सुविहाण' जाण, हत्रसो सवोलि सुविहान खान ।
—स पृथ्वीराज रासो, पृ 160

4 अरु जु कुछ तुछ जपि हैं, सब जानो 'सुविहान'।
—वही पृ 161

रूपभेद—सुविहाण, सुमियाण, सुविआण

सूवा

'सूवा' शब्द 'नाथ सिद्धो की बानियाँ' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

चाम की गोथली, चाम का 'सूवा ।
तास की प्रीति कर, सब जग मूआ ॥
—नाथसिद्धो की बानियाँ, पृ 34

'बानियाँ 'क सम्पादक डा हजारी प्रसादजी द्विवेदी न प्रस्तुत उद्धरण म प्रयुक्त 'गोथली को कोठरी' और 'सूवा का 'शुक' बताते हुए अर्थ किया है 'चम की कोठरी म चम का शुक बना कर बन्द कर दिया'। परन्तु इसकी प्रीति करने से सारा ससार कसे मर सकता है ? उपरिलिखित शब्दो के वास्तविक अर्थों का ज्ञान न होने से इस प्रकार का कल्पित अर्थ करना पड़ा है।

उक्त साखी की भाषा म कहीं कोई दुरूहता नही है। सभी शब्द रात दिन की बोल चाल की भाषा म व्यवहृत होते हैं, अत 'गोथली'= थली तथा 'सूवा ='सूवी का पुल्लिग प्रयोग इन दो शब्दो के आधार पर चमड़े की गोथली = स्त्री जननेंद्रिय और चमड़े का सूवा'= पुरुष जननेन्द्रिय' का रूपक बाधा है। इसकी प्रीति कर करके समग्र सासारिक प्राणी मर रहे हैं। यही अर्थ यहां अभिप्रेत है।

हस

हस' शब्द का व्यवहार 'वेलि श्री कृष्ण रुक्मिणी री' म पाया गया है, जिसका सभी टीकाकारो ने हिन्दी भावार्थ 'प्राण, जीवात्मा जीव' सही प्रकट

किया गया है। यह प्रयोग राजस्थानी भाषा के डिंगळ काव्यों के अतिरिक्त साधारण भाषा कवियो ने भी किया है। राष्ट्रभाषी भाषा में तो 'हंसा भाई' एक प्रिय संबोधन की तरह व्यवहृत हुआ है।

अन्य उदाहरण—

1 पीडिरीयनो खेत प्रवाळो मिरा हंस नीसर सति।

—वेलि 125

2 गळ पळ भरि हंस वर गयण हुवा त्रिपन प्रिय हूर।

—खिड़िया जग्गा वचनिका, पृ 307

3 हाथ गमाती उडियइ हंस।

—महादेव पार्वती री वेलि, 197

विशेष हंस एक जलचर पक्षी होता है। राजस्थानी में इसका पर्याय वाची हंज, हंजा है परन्तु कई स्थानों पर क्षीर नीर विवेकी पक्षी के लिए भी 'हंस' का नाम प्रयुक्त हुआ है। यथा—

हंस चडइ होडइ सदा वीणा पुस्तक पाणि।
निगम निरंतर आलवइ घोर तार मधि वाणि॥

—माधवानळ कामकंदला प्रबंध, पृ 2

हर

'हर' शब्द भी ढोला मारू रा दूहा के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

1 ढोला ढीली 'हर' कियां मूवया मनह विसास।
2 ढाला ढीली 'हर' मुख दीठउ घणेह जणेह॥

—ढोला मारू रा दूहा, 138, 139

श्रीमाताप्रसादजी गुप्त ने हर>धरा=प्रदेश अर्थ बताया है, (ना प्र प, वर्ष 65, अंक 1) जो प्रसंगानुकूल नहीं है व्युत्पत्ति के चक्कर में पड़कर इस प्रकार के सीधे शब्दों का अनर्थ कर दिया जाता है।

'हर' का अर्थ होता है इच्छा। यह साधारण बोल चाल की भाषा में भी प्रचलित है।

अथ उदाहरण—

1 अउ रुक्मिणी तउ वर आया,

'हर' म करउ अन रायहर।

—वेलि श्रीकृष्ण रुक्मिणी री 77

2 अनराय कन्ता अनेरा सिसुपाल प्रमुख राजान हर=वाछा मत करउ।

—वनमाली वल्ली टीका (अप्रकाशित)

3 हरि गुण भणी ऊपनी जिका हर हर तिण वदइ गवरिहर।

—वही, ढाला 29

हाम

हाम' शब्द भी 'वचनिका राठौड़ रतन महेसदासोतरी' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

हाथा पूरे 'हाम पाडि खळा सगनीपुरी।

मगवानो मारथ करै वकूह भी वरियाम ॥ 116 ॥

—वचनिका पृ 293

वचनिका के प्रस्तुतकर्ता डा शम्भुसिंहजी मनोहर ने श्री काशीराम शर्मा द्वारा किया हाम शब्द का हिन्दी अर्थ साहस को अस्वीकार करते हुए इसका अर्थ हाम=मनोरथ इच्छा अभिलाषा लिया है। परन्तु श्री काशीराम जी को यह सशोधन स्वीकार नहीं है। उन्होंने लिखा है जो नहीं, 'हाम' का अर्थ साहस या हिम्मत ही है उदाहरण के लिए वचनिका से बीस वर्ष बाद की रचना रतन रासो का प्रमाण देखें। वर्णन देवगिरी के घेरे में 'गपाल नामक वीर को गोला लगने का है। बहुत सुन्दर प्रसग है अतः नीरस चर्चा के बीच इसे देना आवश्यक लग रहा है—

इहि अचभ अद्भुत कथा गढ़ मडळ गिरदान।

आनि लग्यो गोपाळ के गोळा तोप कमान॥

जत्रह छुटठौ काळ कज तुन्गी बीज अकास।

घर छुट्टो तुटटो कमळ हाम' न छुट्टी तास॥

तेन मत्रिय मान मळ वद्ळ किरन अघात।

करयाहो सामत के घर धरि पूगे सात॥

(गढ-के घेरे की यह अद्भुत कथा है कि गोपाल को तोप रूपी कमान से छूटा वह गोला आकर लगा जो मानो काल के यन्त्र से छूटा था अथवा मानो आकाश म विजली कडकी थी। उस गोले के लगने से गोपाल का धड लोट गया, सिर टूट गया पर फिर भी उसका 'साहस समाप्त नही हुआ। उसका तेज भी मानु अग्नि, ज्वाला या बादल मे चमकती किरण के समान चमक रहा था। उसके हाथ ने उस अवस्था म भी तलवार चलाई और पूरे सात धड धराशायी हुए। शम्भुसिंहजी देखें कि रतन ने भी मरकर इसी तरह उज्जन मे युद्ध किया था। यो हाम है वीर का वह साहस या उत्साह जो प्राण निकलने पर भी बच जाता है।) (वचनिका का सम्पादन पृ 86)

'हाम शब्द के 'साहस व हिम्मत अर्थ की पुष्टि मे जो उदाहरण दिया है। यह राजस्थानी डिंगळ' का न होकर पिंगळ का है। पिंगळ' के कवि डिंगळ' के शब्दो का व्यवहार करते थे परन्तु उसे अपनी शैली मे बदल कर।

श्री काशीरामजी शर्मा न जो उद्धरण अपनी बात के समर्थन मे दिया है उसम प्रयुक्त हाम' शब्द भी मनोरथ इच्छा' का ही अर्थ प्रकट करता है साहस' का नही। वसे 'हम इच्छा' मे ही साहस' की उत्पत्ति होती है यह बात अलग है। डा शम्भुसिंह मनोहर द्वारा प्रस्तुत 'हाम का हिन्दी अर्थ 'इच्छा, अभिलाषा मनोरथ' ठीक है।

अन्य उदाहरण—

1 टाठिसि तुस उपरिथिकी हिमडइ केरि हाम ।
—माधवानळ कामकदळा प्रबंध, पृ 232

2 गढा मूखियो कांमरी 'हांम' गाढी।
—गज गुण रूपक बध पृ 196

3 सग्राम विख 'हाम' पूरत सूरा।
—वचनिका पृ 163

4 हुव मन आणद चौरस हाम जगो थग देख सहीवन जाम।
—वही पृ 338

5 महा वप हाम दहू नप मोर।
—राजरूपक पृ 400

6 कमो सामसुन 'हाम' करारी।

—वही पृ 746

7 चरण कमल चित 'हाम' रे।

—मीरा बाई की पदावली पद 161

हूर

'हूर' शब्द 'राजस्थानी नीति दूहा' के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

भेष लिया सू भगत नह, हुँ नह गहणा 'हूर'।

—राजस्थानी नीति दूहा, 923

प्रस्तुत कृति के सम्पादक श्री मोहनलालजी पुरोहित ने 'हूर' शब्द का हिन्दी अर्थ 'सुन्दर' दिया है। जो भ्रांत है। वस्तुतः 'हूर' संज्ञा है जिसे संपादक ने विशेषण बना दिया। 'हूर' शब्द का अर्थ 'अप्सरा' किया जाता है

अन्य उदाहरण

1 नारायण निध नारायण नूर नारायण हम नारायण 'हूर'

—पीरदानलालस ग्रंथावली 7

हेलउ

हेलउ शब्द 'ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम से चर्चा का विषय बना है। यथा—

मन्दिर कालउ नाग ज्यऊँ हेलउ दे दे खाय।

—ढोला मारू रा दूहा 371

प्रस्तुत कृति के सम्पादक त्रय (डा रामसिंहजी पारीकजी व स्वामीजी) ने 'हेलउ' का अर्थ पुकार किया है। इस पर आपत्ति प्रकट करते हुए डा माताप्रसादजी गुप्त ने लिखा है किन्तु हेला का अर्थ 'अनादर', 'उपेक्षा'

(गड-वे घेरे का यह अद्भुत कथा है कि गोपाल को तोप रूपी कमान से छूटा वह गोला आकर लगा जो माना कालके यन्त्र से छूटा था अथवा मानो आकाश म बिजली कडकी थी। उस गोले के लगने से गोपाल का धड लोट गया, सिर टूट गया पर फिर भी उसका 'साहस समाप्त नही हुआ। उसका तेज भी मानु, अग्नि, ज्वाला या बादल मे चमकती किरण के समान चमक रहा था। उसके हाथ ने उस अवस्था मे भी तलवार चलाई और पूरे सात धड धराशायी हुए। शम्भुसिहजी देखलें कि रतन ने भी मरकर इसी तरह उज्जन मे युद्ध किया था। यो हाम है वीर का वह साहस या उत्साह जो प्राण निकलने पर भी बच जाता है।) (वचनिका का सम्पादन पृ 86)

'हाम शब्द के 'साहस व हिम्मत अथ की पुष्टि म जो उदाहरण दिया है। यह राजस्थानी डिंगळ का न होकर पिंगळ का है। पिंगळ' के कवि डिंगळ' के शब्दो का व्यवहार करते थे परन्तु उसे अपनी शैली मे बदल कर।

श्री काशीरामजी शर्मा ने जो उद्धरण अपनी बात के समथन म दिया है उसमे प्रयुक्त हाम' शब्द भी 'मनोरथ इच्छा' का ही अथ प्रकट करता है साहस का नही। वसे 'दृढ इच्छा' से ही 'साहस की उत्पत्ति होती है यह बात अलग है। डा शम्भुसिंह मनोहर द्वारा प्रस्तुत हाम का हिन्दी अथ 'इच्छा, अभिलाषा मनोरथ' ठीक है।

अन्य उदाहरण—

1 टाळिसि तुम्ह उपरिविकी, हिमडइ केरि 'हाम'।
—माधवानळ कामकदला प्रबध, पृ 232

2 गढा मूंखियो कौमरी 'हाम' गाढी।
—गज गुण रूपक बध पृ 196

3 सग्राम विखं 'हाम' पूरन सूरा।
—वचनिका, पृ 163

4 हुव मन आणद पौरस 'हाम जगी अग देख सडीवन जाम।
—वही पृ 338

5 भडां वप हाम दहू नप मीर।
—राजरूपक, पृ 400

6 नमो रामसुत हाम भरारी।

—वही, पृ 746

7 चरण कमल चित 'हाम' रे।

—मीरा बाई की पदावली, पद 161

हूर

'हूर' शब्द 'राजस्थानी नीति दूहा' के माध्यम से प्रकाश में आया है। यथा—

भेष लियाँ सू भगत नह, हुर नह गहणाँ 'हूर'।

—राजस्थानी नीति दूहा, 923

प्रस्तुत कृति के सम्पादक श्री मोहनलालजी पुरोहित ने 'हूर' शब्द का हिन्दी अर्थ 'सुन्दर' किया है। जो भ्रान्त है। वस्तुत 'हूर' संज्ञा है जिसे सम्पादक ने विशेषण बना लिया। हूर शब्द का अर्थ 'अप्सरा' किया जाता है

अन्य उदाहरण

1 नारायण पिय नारायण नूर नारायण हम नारायण 'हूर'

—पीरदानलालस ग्रंथावली, 7

होता है इसलिए हेलउ देदे' का अथ होगा—'अनादर या उपेक्षा करते हुए।' (ना प्र प वष 65 अक 1)

डा गुप्तजी 'पा स म' के आधार पर श ना का द्रविड प्राणायाम कराते हैं। हेलउ जैसे सुप्रसिद्ध बोल चाल के श—क बारे मे भी उन्होने क्लिष्ट कल्पना कर ही डाली, अन्यथा इसका अथ पुकार सही है।

अन्य उदाहरण—

1 दौडू तो पूगू नहीं 'हेला लाज मरूह।

—ढोला मारू रा दूहा (परिशिष्ट)

2 न करिवा जोग जुगति का हेला'।

—नाथ सिद्धो की बानियाँ 67

हेला

हेला श— राजस्थानी साहित्य एव बोलचाल की भाषा मे पुकार, जोर से बुलाना' अथ मे यवहृत होता है 'दौडू तो पूगू नही हेला लाज मरूह। (ढाला मारू) पद्याश मे उपयुक्त अथ म ही प्रयुक्त हुआ है, पर तु हेला शब्द का एक और अथ भी होता है—आयासहीनता, सरलता। इसी सरलता के अथ म भी साहित्य मे 'हेला के प्रयोग मिलते हैं। यथा—

1 घणा दीह लगु रामत रम्या तुरक देस हेला' निगम्या।

—हम्मीरायण 77

2 मडोवर मनजाण 'हेलि मातहि वीग्र हियो।

—हम्मीरायण मालकवित्त 8

3 भक्ति गाइज्जए हरिस हेला'।

—जैन भा य सग्रह 399